B-3

॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

६८

महाकविबाणभट्टविरचितं

चण्डीशतकम्

सम्पादक एवं हिन्दी व्याख्याता
गोस्वामी कपिलदेव गिरि
साहित्यशास्त्राचार्य, एम० ए०
संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा वितरक
वाराणसी दिल्ली

॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला
६६

महाकविबाणभट्टविरचितं

चण्डीशतकम्

सम्पादक एवं हिन्दी व्याख्याता
गोस्वामी कपिलदेव गिरि
साहित्यशास्त्राचार्य, एम० ए०
संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा वितरक
वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० बा० चौखम्भा, पो० बा० नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

फोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

प्रथम संस्करण १९८३

मूल्य रु० १०–००

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी

प्रस्तावना

महाकवि वाण का चण्डीशतकम्

वाणपरिचय—

संस्कृत गद्यकवियों में महाकवि बाणभट्ट का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। इनकी सहज प्रफुल्लित प्रकृति, चित्रग्राहिणी प्रतिभा, कल्पनाशील मन और असामान्य पाण्डित्य को देखकर ही किसी चतुर चितेरे ने यहाँ तक कह दिया :—

'वाणी बाणो बभूव।' अर्थात् वाग्देवी बाण के रूप में अवतरित हुई। इनका गद्यकाव्य इनकी विद्वत्ता का निकष है। इनकी रचनाएँ संस्कृत गद्यकाव्य के चरमोत्कर्ष को प्रदर्शित करती हैं। यह सौभाग्य है कि इनका जीवनवृत्त तथा स्थितिकाल संस्कृत के अन्य अनेक साहित्यकारों की तरह अविज्ञात तथा विवादग्रस्त नहीं है अपितु ऐतिहासिक धरातल पर सुनिश्चित है। इन्होंने अपनी प्रथम रचना 'हर्षचरित' में अपना परिचय दिया है। इससे ज्ञात होता है कि ये वत्सगोत्री सारस्वत ब्राह्मण थे। 'कादम्बरी' के मंगल श्लोकों में जो परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि इनके एक पूर्वज जिनका नाम 'कुबेर' था, संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। बाण के पितामह का नाम 'अर्थपति' था। बाण के पिता का नाम 'चित्रभानु' और माता का नाम 'राज्यदेवी' था।

महाकवि बाण का शैशव काल मातृ-पितृविहीन था। अतः बिना माँ-बाप के पुत्र होने के नाते आरम्भिक जीवन संकटपूर्ण था। यौवन काल व्यवस्थित रूप में नहीं बीता। स्वभाव उच्छृङ्खल हो गया, घुमक्कड़ जीवन

हो गया। परन्तु अनेक स्थानों का भ्रमण करके और अनेक लोगों के सम्पर्क से संसार का अनमोल अनुभव लेकर बाण अपने घर लौट आये। अवसर पाकर कान्यकुब्ज नरेश हर्षवर्धन के राजदरबार में पहुँच गए, फिर अपनी अलौकिक विद्वत्ता से राजा को सन्तुष्ट किया तथा राज्यसभा-पण्डित के पद को सुशोभित किया था।

विद्वानों का अनुमान है कि हर्ष की मृत्यु (६४८ ई०) के बाद बाण कान्यकुब्ज से अपने पैतृकगृह 'प्रीतिकूट' में आकर रहने लगे थे। जीवन पर्यन्त यहीं रहते हुए साहित्य की साधना पूरी की थी।

स्थितिकाल—

यह सुनिश्चित है कि महाकवि बाण महाराज हर्षवर्धन के सभापण्डित (दरबारी कवि) थे। अतः इनका स्थितिकाल सरलता से निश्चित किया जा सकता है। ऐतिहासिक विद्वानों के अनुसार हर्ष का राज्याभिषेक ६०६ ईसवी में सम्पन्न हुआ था और उसकी मृत्यु ६४८ ईसवी में हुई थी। हर्ष के समय में वर्तमान रहने के कारण बाण का समय ईसवीय सप्तमशतक का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। इस विषय में सुनिश्चित तथ्य यह है कि सप्तमशतक के पूर्वार्द्ध में एक चीनी यात्री हुएन साङ्ग (Hiuen Tsang) नामक बौद्ध संन्यासी चीन देश से भारत भ्रमण के लिए आया था। उसने भारत प्रवास में जो कुछ उस समय देखा था उसका विवरण अपने यात्रा-ग्रन्थ में लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि जिस समय वह उत्तरी भारत का भ्रमण कर रहा था उस समय कान्यकुब्ज (कन्नौज) में राजा हर्षवर्धन राज्य करते थे। दूसरी बात यह है कि महाकवि बाण ने जिन साहित्यकारों और साहित्यिक ग्रन्थों का अपनी रचना में

निर्देश किया है उनमें कोई भी सप्तमशतक से परवर्ती नहीं है। उसके अतिरिक्त आलंकारिक आचार्य वामन (८०० ई०) ने अपने 'काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति' में कादम्बरी का 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' यह वाक्य उद्धृत किया है। इसी प्रकार आनन्दवर्धन तथा धनञ्जय आदि अनेक आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में बाण की रचनाओं से उद्धरण लेकर अपना परिचय दिया है। इन सब अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर यह मत सुदृढ़ है कि महाकवि बाण का स्थितिकाल ईसवीय सप्तमशतक का पूर्वार्द्ध है।

रचना—

महाकवि बाण की तीन रचनाएँ सर्वसम्मत रूप से मानी गई हैं :— हर्षचरित, कादम्बरी और चण्डीशतक। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् 'पार्वतीपरिणय' नामक नाटक को भी बाण की कृति मानते हैं। इस प्रकार बाण की कुल चार रचनाएँ हैं। कादम्बरी तथा हर्षचरित दोनों गद्य ग्रन्थ हैं। कादम्बरी कविकल्पित प्रेम-कथाग्रन्थ है तथा सुघटित देवप्रासाद की तरह है और हर्षचरित ऐतिहासिक तथ्यों से युक्त एक आख्यायिका ग्रन्थ है। हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। आरम्भिक तीन उच्छ्वासों में बाण की आत्मकथा है, शेष पाँच उच्छ्वासों में महाराज हर्ष का जीवनचरित है। कादम्बरी पूर्वभागमात्र बाण की रचना है। कादम्बरी की समाप्ति के पूर्व ही बाण दिवंगत हो गए थे। बाद में इनके सुपुत्र भूषणभट्ट ने इसका उत्तरार्द्ध लिख कर कादम्बरी कथा को पूर्ण किया है।

चण्डीशतकम्

चण्डीशतक एक पद्यात्मक स्तुतिपरक रचना है। इसमें कुल १०२ श्लोक हैं। इन सब श्लोकों में भगवती दुर्गा की स्तुति की गई है। चण्डी-

शतक की लोकप्रियता इतनी रही है कि इसके अनेक श्लोक शार्ङ्गधर, पद्धति, सरस्वतीकण्ठाभरण तथा अर्जुनवर्मदेव रचित अमरुशतक में उपलब्ध होते हैं* ।

चण्डीशतक में महिषासुरमर्दिनी भगवती दुर्गा के महिमामण्डित स्वरूप की सुन्दर झांकी मिलती है। भगवती पार्वती के विभिन्न नाम रूपों में 'चण्डी' नाम भी आता है। महाकवि बाण ने यहाँ जिन अन्य नामरूपों को स्मरण किया है उनमें मुख्यतः ये हैं :—शैलपुत्री, गौरी, पार्वती, कात्यायनी, आर्या, जया, देवी, रुद्राणी, अम्बिका, भवानी, शिवा, काली, उमा, चण्डिका। इन नामों को यथास्थान सम्बोधित करके सार्वजनिक मङ्गल की कामना की गई है। चण्डीशतक के पाठक को देवी के सार्वभौम सत्ता का यहाँ पूर्ण परिचय मिल जाता है। उस क्रूर महिषासुर दैत्य का वध करने में भगवती पार्वती के असीम पराक्रम का पग-पग पर दर्शन होता है।

साथ ही यह विदित होता है कि महिषासुर एक दुर्दान्त दानव था और उसके वध की शक्ति इन्द्रादि देवताओं में नहीं थी। यहाँ तक कि त्रिदेवों—ब्रह्मा-विष्णु-महेश—में भी नहीं थी। अतः उस दानवराज के वध के लिए भगवती चण्डी देवी का एकमात्र वाम चरण (बायाँ पैर–) ही सर्व समर्थ सिद्ध हुआ तथा देवी 'महिषासुरमर्दिनी' इस पुनीत नाम से सुशोभित हुई है।

आइये, अब चण्डीशतक के पावन काव्यामृत का थोड़ा पान करें। महिषासुर जब युद्धक्षेत्र में उतरा तो रुद्रगण भाग चले, सूर्य पिघल गए, चन्द्रमा शङ्कित हो गए, वायु देव चलना बन्द कर दिए, कुबेर वैरभाव छोड़ दिए, इन्द्र का कठोर वज्र ध्वस्त हो गया, विष्णु का अस्त्र भी कुण्ठित हो गया।

---

* द्रष्टव्य—काव्यमाला–गुच्छक चतुर्थ–निर्णय सागर संस्करण १९३७।

तब उस कठोर महिषदैत्य को सरलता पूर्वक मारती हुई वह भूरिभावा भवानी आपलोगों के पापों को शान्त करें :—

विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्ने
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥
(चण्डीशतक—६६)

भोज ने अपने आलंकारिक ग्रन्थ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में उपर्युक्त श्लोक को दृष्टान्त रूप में उद्धृत किया है।

एक जिज्ञासा होती है कि आखिर देवी चण्डिका का वह चरण ही क्यों उस महिष के वध का कारगर उपाय सिद्ध हुआ या यों कहें कि 'लात का देवता बात से नहीं मानता' यही यहाँ सटीक लोकोक्ति सिद्ध हो रही है। देखिये :

जो महिष ब्रह्मा के ज्ञानप्रद उपदेश से (साम—समझौता रूप उपाय से) नहीं माना, हरि—विष्णुभगवान के चक्र के प्रयोग रूप उपाय से नहीं शान्त हुआ, इन्द्र के ऐरावत हाथी के दान वर्षण (मद की वृष्टि) रूप तृतीय उपाय से ऊपर से और मलीन हुआ या क्रोध धारण किया परन्तु सन्तुष्ट नहीं हुआ और यमराज के दण्ड-प्रयोग रूप चतुर्थ उपाय से न दबा, इस प्रकार जब ये चारो उपाय विफल हो गए तो उस महिषरूप शत्रु के हनन के निमित्त चण्डिका का चरणप्रहार रूप पञ्चम उपाय ही समर्थशाली हुआ; ऐसा देवी का वह चरण आपलोगों को सुखदायी हो :—

साम्ना ऽऽम्नाययोनेर्धृतिमकृत हरेर्नापि चक्रेण भेदा-
त्सेन्द्रस्यैरावणस्याप्युपरि कलुषितः केवलं दानवृष्ट्या।

दान्तो दण्डेन मृत्योर्न च विफलयथोक्ताभ्युपायो हतोऽरि-
र्येनोपायः स पादः सुखयतु भवतः पञ्चमश्चण्डिकायाः ॥

(च० श०—४६)

चण्डीशतक के इन पद्यों से यह सिद्ध होता है कि महाकवि बाणभट्ट महाकाव्य लेखन के क्षेत्र में भी बेजोड़ थे और अपनी समासशैली को अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षादि अलंकारों के माध्यम से अलंकृत किये हुए हैं।

महिषासुर के जन्म की कहानी

इस संसार की सृष्टि-प्रक्रिया में अहंकार समाया हुआ है, ब्रह्मा और विष्णु भी अहंकार के वशीभूत हुए हैं फलतः सारी योजनाएँ अहंकार से सिक्त है, सब में अहंकार भरा है। देवीभागवत के अनुसार आदिकाल में महिषासुर ने इस धरा पर जन्म लिया और एकलाख वर्ष तक घोर तप साधा। तपस्या से जब ब्रह्मा खुश हुए तो महिषासुर ने यह वर मांगा कि वह स्त्री के हाथ से मरे, पुरुष जाति के हाथों से नहीं। ब्रह्मा ने एवमस्तु कहकर वर दे दिया और महिषासुर सभी दानवों में राजा बना।

कश्यप की पत्नी दनु के गर्भ से रंभ का जन्म हुआ। रंभ घोर तपस्या करके अग्नि देवता से वर प्राप्त किया कि उसको पुत्र होवे तथा वह विश्व-विजयी बने। समय पाकर रंभ ने एक मदमत्त महिषी (भैंस) में अपना वीर्य रख दिया। इसके बाद एक मदैला भैंसा उस महिषी के साथ मैथुन करना चाहा और उसके पीछे पड़ गया। रंभ से यह सब देखा नहीं गया और उस भैंसे के साथ लड़ने लगा। भैंसे ने क्रोध में आकर रंभ में सींग-देमारा परिणामतः रंभ की मृत्यु हो गई। बेचारी महिषी (भैंस) भाग

करके यक्षों की शरण में गई। यक्षों ने भैंसे को मार डाला। महिषी पतिव्रता होने के कारण रंभ के साथ सती हो गई। ज्यों ही चिता पर प्रवेश की त्यों ही महिषी के गर्भ से महिषासुर ने जन्म लिया। पतिव्रता महिषी के सतीत्व के प्रताप से रंभ भी जी गया, महिषी का शोक आनंद में बदल गया।

कालक्रम से महिषासुर के प्रताप बल से सारी पृथ्वी वश में हो गई। ब्राह्मणों की ओर से महिषासुर को यज्ञ का भाग मिलने लगा। 'एक करैली अपने तींत दूसरे चढ़े नीम पर' की लोकोक्ति चरितार्थ करते हुए महिषासुर स्वर्ग को भी जीत लिया। वह देवताओं पर अत्याचार का डंका बजाने लगा। महिषासुर अपने गोतिया भाइयों के जरिए विष्णु को भी बेइज्जत किया, पीड़ित किया उसके सामने से देवता गण भाग चले। इन्द्रासन पर उस दैत्य का एकच्छत्र राज्य स्थापित हो गया। देवता लोग लुक छिप करके गिरि गुफाओं में रहने लगे। चारों ओर उस महिष का महातम छा गया। देवता उससे डरने लगे।

ब्रह्मा जी देवताओं को लेकर शिव जी के पास, फिर शिव जी उन्हें विष्णु की शरण में ले गए। विष्णु भगवान ने बतलाया कि महिषासुर की मौत मात्र एक महिला (स्त्री) के हाथों होगी। फिर तो वहाँ ब्रह्मा विष्णु, महेश तथा अन्यान्य देवताओं के तेज पुंज से वहाँ एक सुन्दर देवी प्रतिमा प्रकट हो गई। देवताओं ने बहुमूल्य अलंकार वस्त्र और नाना प्रकार के हथियारों से उस दिव्य मूर्ति को सुसज्जित कर दिया, अलंकृत किया तथा सबों ने उस देवी की आराधना की। देवी ने देवों को अभय दान दिया और पापी महिष दैत्य को वध के लिए वचन दिया। बाद में देवी ने इतनी जोर से अट्टहास किया कि धरती कांपने लगी, पर्वत हिलने लगे। जब अट्टहास के शब्द

महिषासुर के कानों में पड़े तो वह अपने दूतों को पता लगाने के लिए भेजा। दूतों ने बताया कि एक स्त्री ने अट्टहास (जोर का ठहाका) किया है तथा उसका रूप रंग अद्भुत है, देखने में वह कोई कुमारी मालूम पड़ती है।

महिषासुर ने उस स्वर्गीय कन्या को लिवा लाने के लिए तथा अपनी रानी बनाने के उद्देश्य से पुनः अपने दूतों को देवी के पास भेजा। जब दूतों ने जाकर देवी से महिष की बातों को कहा तो देवी ने इस प्रकार से उत्तर दिया—'मैं देवताओं तथा जगत भर की माता हूँ, लोग मुझे 'महालक्ष्मी' कहते हैं। तुम लोग जा करके उस महिष को बता दो कि वह अपने प्राणों को बचाना चाहता है तो अभी स्वर्ग का सिंहासन छोड़ दे और पाताल में चला जावे।' दूतों ने वापस आकर के सब बातें उस दैत्यराज से बता दीं। 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' के अनुसार देवी के साथ में वह महिषासुर लड़ने पर उतारू हो गया। युद्ध में उस दैत्य के सभी सैनिक मारे गए। अंत में वह महिषासुर अपनी माया जाल से एक सुन्दर युवा मानव का रूप धरके देवी के सामने जाकर बोला—'तू मेरी पटरानी हो जा।' परन्तु देवी ने उससे कहा कि तुम स्वर्ग-लोक छोड़ दो, पाताल में चले जाओ अन्यथा तेरी जान नहीं बचेगी। इस बात को सुनते ही महिष क्रोध में आ गया और देवी से युद्ध करने लगा। इस घोर युद्ध में देवी ने महिषासुर का सिर काट दिया। देवी का वाहन सिंह ने बचे दानवों को खा लिया शेष बचे दानव पाताल में जाकर शरण लिए। इस प्रकार इस पापी महिष का अंत देवी दुर्गा के हाथों हुआ तभी से लोक में इनका नाम 'महिषासुरमर्दिनी' पड़ा है।

अंत में देवों ने नवरंगी वाणी में महामाया दुर्गा देवी की आराधना की। महामाया ने प्रसन्न होकर देवताओं को यह वरदान दिया कि जब जब तुम लोग संकट में पड़ोगे तब तब मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। इस प्रकार कह करके

वह महामाया अन्तर्धान हो गई। इस महिष दैत्य के वध के बाद सभी सुखी हुए, प्रजा वर्ग के कष्ट का अंत हो गया, सर्वत्र धन-धान्य परिपूर्ण हो गया (विशेष—देवीभागवत में स्कन्ध पाँचवा सर्ग १—७ तक द्रष्टव्य)।

अस्तु, माँ चण्डिका का यह रूप माता पार्वती का ही परिवर्तित एवं विकसित रूप है। देवी पार्वती शिव की आदर्श पत्नी है। शिव भी मृत्युञ्जय एवं महादेव इस नाम से विश्रुत हैं। शिव और पार्वती का प्रेम अलौकिक है, अनुपम है तथा उत्कट है। कालिदास ने 'तथाविधं' शब्द के भीतर उस गम्भीर अर्थ की अभिव्यञ्जना की है। पार्वती के प्रेम का पुरस्कार देने में शिव भी पीछे नहीं हैं। उन्होंने पार्वती को अपने उन्नत मस्तक पर स्थान दिया है। पत्नी के प्रति इतना आदर अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसी शिवप्रिया की तपःसाधना सुरभि से भारतीय संस्कृति सुवासित है, यही महाशक्ति लक्ष्मी रूप से पूजित है। अन्त में पुनः मेरा विनम्र निवेदन है कि भगवती पार्वती का वह वामपाद आप लोगों के दारुण पाप को सदैव शान्त करे :—

पार्वत्या वामपादः शमयतु दुरितं दारुणं वः सदैव ॥

(च० श०—१०१)

विजयादशमी, सं० २०४०
दिनांक १६—१०—१९८३
ग्राम—अफराद, पो० पोखरा
जिला—सीवान, बिहार

विनयावनत—
कपिलदेव गिरि

महाकविवाणभट्टविरचितं

चण्डीशतकम्

'विजया'-हिन्दीटीकासहितम्

मा भाङ्क्षीर्विभ्रमं भ्रूरधर विधुरता केयमास्यास्य रागं
पाणे प्राण्येव नायं कलयसि कलहश्रद्धया किं त्रिशूलम् ।
इत्युद्यत्कोपकेतून्प्रकृतिमवयवान्प्रापयन्त्येव देव्या
न्यस्तो वो मूर्ध्नि मुष्यान्मरुदसुहृदसून्संहरन्नङ्घ्रिरंहः ॥ १ ॥

जय जय चण्डी महिषमर्दिनी पशुपति भामिनि माया ।
सहज सुमति वर देहु स्वामिनि देवि शतक तव पाया ॥

हे भौंह, बाँकपन* मत भांगो, हे ओठ, विकलता (टेढ़ापन) छोड़ो, हे मुख, (क्रोध की) लाली दूर करो, हे हाथ, यह महिष (दैत्य) जिन्दा नहीं है, अतः इसके साथ लड़ाई की इच्छा से त्रिशूल क्यों लेते हो ? अथवा यह पुरुष तो अदना (तुच्छ) जीव है, हमारे चरण का पात्र है; यानी चरण की चोट से मरने वाला है तब क्यों तुम सब असमय में व्यर्थ क्रोध करके अपने में विकारभाव ला रहे हो, इस प्रकार से अपने सभी क्रोधित अंगों को मानों समझाती-शान्त करती हुई देवी (चण्डी) के चरण आप लोगों के पाप को हरे, जो (चरण) देववैरियों के प्राणों का संहार करने वाला है तथा महिषासुर (दैत्य) के मस्तक पर रखा हुआ है ॥ १ ॥

---

* भौंह की प्रशंसा साहित्यशास्त्र में भूरिशः है । इसके टेढ़ेपन की तुलना धनुष,' से की गई है । 'नयन' को वाण कहा गया है । इसका बाँकपन

हुङ्कारे न्यक्कृतोदन्वति महति जिते शिञ्जितैर्नूपुरस्य
श्लिष्यच्छृङ्गक्षतेऽपि क्षरदसृजि निजालक्तकभ्रान्तिभाजि।
स्कन्धे विन्ध्याद्रिबुद्ध्या निकषति महिषस्याहितोऽसूनहार्षी-
दज्ञानादेव यस्याश्चरण इति शिवं सा शिवा वः करोतु ॥ २ ॥

जो (चरण) महिषासुर (दैत्य) को विन्ध्य पर्वत समझकर उसके कन्धे पर स्थित है तथा अपनी खुजली मिटाने के लिए उसे रपट रहा है-(महिषासुर काला है अतः विन्ध्याचल का भ्रम हो गया है)। घिसते समय देवी के नूपुर (पायल) से बहुत तेज झनझनाहट (ध्वनि) हुई जिससे समुद्र गर्जन धीमा पड़ गया तथा महिषासुर का भयंकर हुँकार भी मन्द पड़ गया (महिषासुर का हुँकार कोई सुन न सका); फिर तो रगड़ करते उस (दैत्य) की सींग छिल गई और उससे खून की ऐसी धारा बह चली जिसमें (रक्त प्रवाह में) यह सन्देह होने लगा कि कहीं देवी के चरण का महावर (गुलाबी रंग) तो नहीं है, ऐसी भगवती शिवा आप लोगों का कल्याण करें जिनके चरण अनजाने ही महिषासुर के प्राणों को हर लिया ॥ २ ॥

जाह्नव्या या न जातानुनयपरहरक्षिप्तया क्षालयन्त्या
नूनं नो नूपुरेण ग्लपितशशिरुचा ज्योत्स्नया वा नखानाम्।
तां शोभामादधाना जयति नवमिवालक्तकं पीडयित्वा
पादेनैव क्षिपन्ती महिषमसुरसादाननिष्कार्यमार्या ॥ ३ ॥

स्त्री के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है। इसीलिए देवी यहाँ इसे बनाये रखना चाहती है। परन्तु क्रोध की हालत में यह बाँकपन भंग होता है। टीकाकार 'विभ्रम' का अर्थ 'विलास' दिया है। साहित्य की भाषा में इसे 'मोहक भाव-विलास' कहा जाता है। 'इव' शब्द के प्रयोग से यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। श्लोक के प्रत्येक चरण में इक्कीस अक्षर हैं अतः स्रग्धरा छन्द है।

रतिकाल में विनयी महादेव की प्रेरणा के कारण पैरों में लगे महावर को न धोने-पोछने वाली गंगा से उस शोभा की तुलना नहीं है, निश्चयही उस पायल (नूपुर) से भी वह शोभा नहीं मिलती; (कृष्ण पक्ष में) गलित (क्षय) होने वाली चन्द्रकान्ति भी उसके सामने फीकी है, नखों की कांति (शोभा) भी वहाँ नहीं जाती। चूँकि असुर (महिष दैत्य) के प्राणरूपी रस को ग्रहण किया है अतः उसके समक्ष वह (दैत्य) भी निष्प्रयोजन हो गया है। ऐसे चरणों में उस अपूर्व शोभा को धारण करने वाली, ताजे (टटका) महावर की नाईं अपने पैरों से मसल कर महिष (दैत्य) को फेंक देने वाली वह आर्या देवी जयशील हो ॥ ३ ॥

विशेष—जैसे अलक्तक (आलता रंग) को पैरों से रौंद-मीस कर उसके रस भाग को लेकर निस्सार भाग को फेंक दिया जाता है उसी प्रकार देवी ने रसभूत प्राणों को नष्ट करके महिष को (दूर) फेंक दिया; फिर तो अलक्तक रंग की शोभा भी बनावटी है क्योंकि देवी दुर्गा के चरणों की शोभा दैवी है, प्राकृतिक (स्वाभाविक) है।

मृत्योस्तुल्यं त्रिलोकीं ग्रसितुमतिरसान्निःसृताः किं नु जिह्वाः
किं वा कृष्णाङ्घ्रिपद्मद्युतिभिररुणिता विष्णुपद्याः पदव्यः।
प्राप्ताः संध्याः स्मरारेः स्वयमुत नुतिभिस्तिस्र इत्यूह्यमाना
देवैर्देवीत्रिशूलाहतमहिषजुषो रक्तधारा जयन्ति ॥ ४ ॥

अतिरस से (अत्यन्त भूखा होने से) एक ही समय में त्रिलोकी को मानो निगलने के लिए क्या मृत्यु की जीभ तो नहीं (बाहर) निकली है; अथवा भगवान विष्णु के चरणकमलों की कांति से लाल बनी हुई गंगा (विष्णुपदी) का प्रवाह (तो नहीं) है; अथवा शिव की प्रार्थनाओं से (रक्त वर्णी) तीनों (काल) की संध्याएँ स्वयं पहुँच गई हैं; इस प्रकार देवों से उत्प्रेक्षा (कल्पना) की गई देवी

(चण्डी) के त्रिशूल से कटे महिषासुर के शरीर से उत्पन्न (निकले) रक्त की तीनों धाराएँ (त्रिवेणी) जयशील हों ॥ ४ ॥

दत्ते दर्पात्प्रहारे सपदि पदभरोत्पिष्टदेहावशिष्टां
श्लिष्टां भृङ्गस्य कोटिं महिषसुररिपोर्नूपुरग्रन्थिसीम्नि ।
मुष्याद्वः कल्मषाणि व्यतिकरविरतावाददानः कुमारो
मातुः प्रभ्रष्टलीलाकुवलयकलिकाकर्णपूरादरेण ॥ ५ ॥

वह माता (पार्वती) आप लोगों के पापों को हरे, जिस (माता) का कुमार (शिशु कार्तिकेय) महिषासुर के साथ युद्ध समाप्त होने पर (भूमि पर) गिरे लीला कमल की कली के बने कनफूल को आदरपूर्वक महिष शत्रु की सींग के अग्रभाग में (यह समझकर कि यह महिष शृंग का सिरा भाग नहीं है किन्तु मेरी मां के कानों से गिरा नीले कमल की कलीरूप कनफूल ही यह है इस श्रद्धा से) रख रहा है, जो शृंग कोटि (सींग का किनारा भाग) मद के कारण प्रहार करने पर शीघ्र ही (देवी के) चरण की गुरुता (बोझ-भार) से तत्क्षण चूर्ण हो गया तथा देह मात्र बचा है और (देवी के) नूपुर (पायल) की ग्रन्थि-सीमा (जोड़) में चिपका (लगा) है ॥ ५ ॥

विशेष—इस श्लोक में कुमार आप लोगों के कल्मष को हरले—'कुमारो वः कल्मषाणि मुष्यात्' ऐसा यदि अन्वय करते हैं तो कुमार की अप्रासङ्गिता अन्वय में असंगति पैदा करती है। इसीलिए ऐसा अध्याहार किया कि वह माता आप लोगों के पापों को हरले—'सा माता वः कल्मषाणि मुष्यादिति*।

शश्वद्विश्वोपकारप्रकृतिरविकृतिः सास्तु शान्त्यै शिवा वो
यस्याः पादोपशल्ये त्रिदशपतिरिपुर्दूरदुष्टाशयोऽपि ।

* द्रष्टव्यः—निर्णयसागर काव्यमाला (चतुर्थ-गुच्छक) संस्करण ।

नाके प्राप्तप्रतिष्ठामसकृदभिमुखो वादयञ्शृङ्गकोट्या
हत्वा कोणेन वीणामिव रणितमणिं मण्डलीं नूपुरस्य ॥ ६ ॥

वह शिवा आप लोगों को सुख-शान्ति दे। विश्व के प्राणियों का निरन्तर उपकार करना जिसकी प्रकृति (स्वभाव) है, जो (देवी) विकृति (विकार) रहित है, जिसके चरणों से इन्द्र का वैरी महिष (दैत्य) स्वर्गीय पद-प्रतिष्ठा प्राप्त किया (स्वर्गगामी-स्वर्गनिवासी हुआ), वह दैत्य अत्यन्त नीच स्वभाव का होते हुए भी अपनी सींग के सिरे से (कोर से) (देवी के) नूपुर-मण्डली को मार-मारकर वीणा बजाने की तरह रुनझुन करता है तथा जिस देवी के चरण तले (मूल भाग में) मर करके स्वर्ग प्राप्त करता है (वह देवी आपको शान्ति दे) ॥ ६ ॥

निष्ठ्यूतोऽङ्गुष्ठकोट्या नखशिखरहतः पार्ष्णिनिर्यातसारो
गर्भे दर्भाग्रसूचीलघुरिव गणितो नोपसर्पन्समीपम्।
नाभौ वक्त्रं प्रविष्टाकृतिविकृति यया पादपातेन कृत्वा
दैत्याधीशो विनाशं रणभुवि गमितः सास्तु देवी श्रिये वः ॥७॥

वह देवी आपलोगों का कल्याण करे, जिसके द्वारा वह दैत्याधिपति महिष रणक्षेत्र में विनष्ट हुआ। जो (दैत्य) (देवी के) अंगूठे की कोर से पराजित है, जो नखाग्र से हत है, जो गुल्फ (टखना) के अधोभाग (एड़ी) से निष्प्राण हो गया है; जैसे पैर के तलवे के बीच में पड़ा कुश का छोटा-सा अगला हिस्सा (टूंड़) की कोई कीमत नहीं है (पैर में न गड़ने से जैसे वह निष्प्रभावी है) वैसे ही वह (दैत्य) देवी के सम्मुख अति तुच्छ (प्रभावहीन) दिखाई देता है। आरम्भ में जिस (देवी) ने अपने चरण प्रहार से उस दैत्य के मुख को नाभि में प्रवेश कराकर के उसकी आकृति (रूपरेखा) को विकृत कर दिया (बाद में उसे मार दिया) वह देवी आप लोगों के मंगल के लिए होवे ॥ ७ ॥

ग्रस्ताश्वः शष्पलोभादिव हरितहरेरप्रसोढानलोष्मा
स्थाणौ कण्डूं विनीय प्रतिमहिषरुषेवान्तकोपान्तवर्ती ।
कृष्णं पङ्कं यथेच्छन्वरुणमुपगतो मज्जनायेव यस्याः
स्वस्थोऽभूत्पादमाप्त्वा ह्रदमिव महिषः सास्तु दुर्गा श्रिये वः ॥८॥

वह दुर्गा आप लोगों के शुभ के लिए होवे, जिसके चरण रूपी सरोवर में (डुबकी लगाकर तथा लोट-पोट करके) महिष (दैत्य) स्वस्थ हुआ तथा स्वर्ग में चला गया। वह (महिष-दैत्य) सूर्य के हरेरंग के घोड़ों को हरा-हरा कोमल तृण (घास) समझ कर चर गया (खा गया), वह अग्नि के तेज (लपट) को नहीं सहता अथवा अग्नि देवता के तेज (गर्व) को वह (महिष–भैंसा) नहीं सहता; अन्य महिष जैसे ठूँठ काठ में देह की खुजली (रगड़ कर) दूर करता है वैसे ही वह महादेव (स्थाणु = शिव) के साथ युद्ध में अपनी खुजली दूर करके भी दम नहीं ले रहा है, अशान्त बना है; दूसरे महिष (यम के वाहन–महिष) को देख करके क्रोधित है, सामान्य महिष भी अपने प्रतिद्वन्द्वी अन्य महिष को देखकर द्वेष* करता है, यानी उससे लड़ पड़ता है। विष्णु को कृष्णवर्ण (काला) देख कर उन्हें (कछार का) पाँक मानकर खूब लोट-पोट (लेवाड़) लगाता है, सामान्य महिष–भैंसा भी पाँक में लोटता है तथा जल में अवगाहन (पानी में घुसकर डुबकी) करता है। इस प्रकार उक्त सूर्य के हरे घोड़े आदि स्थानों में घुमक्कड़ी करके भी वह महिष स्वस्थ नहीं हुआ किन्तु वही महिष चण्डी के चरणों में जाकर शान्ति (स्वस्थता) को प्राप्त किया (वह देवी शुभकारी होवे) ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यातङ्कशान्त्यै प्रविशति विवशे धातरि ध्यानतन्द्री-
मिन्द्राद्येषु द्रवत्सु द्रविणपतिपयःपालकालानलेषु ।

---

* भोजपुरी में कहावत है—'एक नाँद दू भैंसा ता घर कुशल कइसा ॥'

ये स्पर्शेनैव पिष्ट्वा महिषमतिरुषं त्रातवन्तस्त्रिलोकीं
पान्तु त्वां पञ्च चण्ड्याश्चरणनखनिभेनापरे लोकपालाः ॥९॥

चण्डी के चरणों के नख* के समान (बहाने) अन्य पाँचों लोकपाल तुझे बचावें (रक्षा करें)। जो (लोकपाल रूपी) नख मात्र स्पर्श से अति रुष्ट महिष को चूर्ण करके त्रिलोकी को बचाते हैं। (तब प्रश्न है कि ब्रह्मा आदि कहाँ गए कि चण्डी के चरण नख ही महिष को पीस कर लोकपाल बने हैं ? उत्तर है—) त्रैलोक्य के उपद्रव (आतंक) की शान्ति के लिए ब्रह्मा विवश होकर चिन्ता में ध्यान मग्न हैं या विवशता में ऊँघ रहे हैं। (तब इन्द्रादि पञ्च लोकपाल कहाँ गए ? उत्तर है—) इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा यम—ये संग्राम से पिण्ड छुड़ा लिए हैं या महिष की महिमा (शक्ति) के आगे ये (लोकपाल) पानी-पानी हो गए हैं, दहल गए हैं, पिघल गए है अतः देवी (चण्डी) के चरण ही लोकपाल बने हैं ॥ ९ ॥

प्रालेयोत्पीडपीन्नां नखरजनिकृतामातपेनातिपाण्डुः
पार्वत्याः पातु युष्मान्पितुरिव तुलिताद्रीन्द्रसारः स पादः।
यो धैर्यान्मुक्तलीलासमुचितपतनापातपीतासुरासी-
न्नो देव्या एव वामच्छलमहिषतनोर्नाकलोकद्विषोऽपि ॥ १० ॥

नख रूपी चन्द्रमा के प्रकाश से अति शुभ्र देवी पार्वती का वह चरण आप सब की रक्षा करे, जो (चरण) हिम के संसर्ग से परिपुष्ट है (बरफ का खण्ड है, शरीर को गलाने की क्षमता रखता है)। मानों वह हिमालय का ही छोटा-सा पैर हैं, अथवा अपने पिता (हिमालय) के चरण सदृश ही वह (चरण) है (अतः पिता सदृश कन्या पार्वती भी धन्य है यह प्रशस्ति हुई), जिस (चरण) ने हिमालय (अद्रि) के बल (अन्तःसार) को माप लिया है (अत एव वह गुरु-गम्भीर

* 'नखनिभेन' के स्थान पर, नखमिषेण' पाठान्तर है नि० सा० में।

है)। जो पैर देवी का ही वाम नहीं हैं अपितु स्वर्गलोकी देवों का द्वेषी एवं छलिया महिष (दैत्य, भैंसा) का भी वैरी (वाम) है क्योंकि वह (चरण) बलाधिक्य के कारण लीला* छोड़कर अचानक महिष (दैत्य) के प्राणों को पी गया है, निगल गया है ॥ १०॥

वक्षो व्याजैणराजः स दशभिरभिनत्पाणिजैः प्राक्सुरारेः
पञ्चैवास्तं नयामो युवतिचरणजाः शत्रुमेते वयं तु।
इत्युत्पन्नाभिमानैर्नखशशिमणिभिर्ज्योत्स्नया स्वांशुमय्या
यस्याः पादे हतारौ हसित इव हरिः सास्तु काली श्रिये वः ॥११॥

वह काली आप लोगों के मंगल (कल्याण) के लिए होवे; जिसके चरण में शत्रु (महिष) के हत होने पर उत्पन्न नख चन्द्रों की मणियों ने अपनी चमक-दमक एवं शुभ्र प्रकाश के द्वारा अत्यन्त अभिमान के साथ मानो हरि (विष्णु) का उपहास किया था। (ऐसा क्यों, तो कहते हैं—) पुरातन काल में हिरण्यकशिपु की छाती को कपटी सिंह (नरहरि) ने अपने दश नखों (दोनों हाथों के नखों) से फारा था किन्तु हम सब ने मात्र युवती (स्त्री) के चरणों से उत्पन्न होकर फिर पाँच ही मिल करके शत्रु (महिष) का अंत (सर्वनाश) कर दिया है (यही इनका अभिमान है), फिर हरि (नर-सिंह) के नख तो (पुरुष) हाथों से उत्पन्न हैं और हम सब केवल युवती (नारी) के चरण से निकले हैं; फिर वे (नख) तो दस रहे परन्तु हम पाँच ही हैं। उन्होंने तो केवल छाती को फाड़ा था किन्तु हमने शत्रु को ही समाप्त (अस्त) कर दिया (यही इनके अभिमान के कारण है) ॥ ११॥

विशेष—नरसिंहावतार में विष्णु भगवान् ने प्रह्लाद के पिता हिरण्य-

---

* जहाँ वीररस के विभावक धैर्य, शौर्यादि हैं वहाँ शृंगार का व्यञ्जक (उत्पादक) लीला नहीं होती, अतः यहाँ कवि वाण भट्ट ने 'लीलामुक्त' कहा है। अतः यहाँ शत्रु (महिषदैत्य) का व्यापादन ही उचित प्रतीत होता है।

कशिपु को नरसिंह (कपटी सिंह) रूप से छाती फाड़कर मारा था परन्तु देवी चण्डी के चरण ही महिष वध में कारण है, अतः विष्णु से बढ़चढ़ कर चरण को कवि ने रखा है और यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार में वर्णन किया है।

रक्ताक्तेऽलक्तकश्रीर्विजयिनि विजये नो विराजत्यमुष्मि-
न्हासो हस्ताग्रसंवाहनमपि दलिताद्रीन्द्रसारद्विषोऽस्य।
त्रासेनैवाद्य सर्वः प्रणमति कदनेनामुनेति क्षतारिः
पादोऽव्याच्चुम्बितो वो रहसि विहसता त्र्यम्बकेणाम्बिकायाः॥१२॥

शत्रु का वध करने वाला अम्बिका का वह चरण आप लोगों की रक्षा करे, जिसे हँसते हुए शिव ने एकान्त में अन्य कोई विनय प्रकार न देखकर चुम्बन किया था। (शिव ने क्यों चरण चुम्बन किया और क्या कहा, तो कहते हैं—) हे विजया, इस विजय में (शत्रु के) रक्त से रंगे तुम्हारे इस चरण (की विजयिनी शोभा) में महावर (अलक्तक) की शोभा तो फीकी लगती है अथवा हिमालय समान गरिमामय शत्रु (महिष) को जिसने नष्ट किया है ऐसे तेरे चरणों को हाथ लगाना भी उपहास है; फिर भी इस समय इस महिष वध से सब लोग (देव लोग) त्रस्त होकर प्रणाम करते हैं; चूँकि महावर भी पैरों में हाथ से ही लगाया जाता है, प्रणाम भी हाथों से ही वहाँ (पैर छूकर) होता है। इस प्रकार ये तीनों वहाँ उचित हैं किन्तु यहाँ तीनों नहीं घटित होते इसीलिए महादेव जी ने देवी के चरण का चुम्बन ही किया॥ १२॥

विशेष—टीकाकार ने 'विजया' से 'पार्वती की सखी' अर्थ दिया है। यहाँ ध्यान रहे कि बाण ने अपने 'पार्वती-परिणय' नाटक में 'जया' तथा 'विजया' को पार्वती की सखी के रूप में कल्पित किया है परन्तु दुर्गा सप्तशती में 'दुर्गा' का अपर नाम 'जया' से सम्बोधित करते ध्यान किया गया है—'ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां

सेवितां सिद्धिकामैः" ॥ (अ० ४) साथ ही, सप्तशती के दुर्गा कवच में लिखा है कि 'जया' आगे से और 'विजया' पीछे की ओर से मेरी रक्षा करें :—

"जया में चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः" । (दुर्गा-कवच)

अतः दुर्गा के विभिन्न नामों में 'विजया' भी एक है ।

भङ्गो न भ्रूलतायास्तुलितबलतयानास्थमस्थ्नां तु चक्रे
न क्रोधात्पादपद्मं महदमृतभुजामुद्धृतं शल्यमन्तः ।
वाचलं नूपुरं नो जगदजनि जयं शंसदंशेन पार्ष्णे-
र्मुष्णन्त्यासून्सुरारेः समरभुवि यया पार्वती पातु सा वः ॥१३॥

वह पार्वती आप लोगों की रक्षा करे, जिसने अपनी एड़ी से समर भूमि में महिष के प्राणों को हरते हुए (क्रोध से) न केवल भ्रूलता (भौंह) को ही भंग (विनष्ट) किया अपितु सन्तुलित बल के कारण महिष का भी भंग (विनाश) किया । फिर देवी ने क्रोध से अपने चरणकमल का ही उद्धार नहीं किया, बल्कि अमृतभोजी देवताओं के हृदय का बहुत बड़ा कील भी निकाल बाहर किया । (क्योकि देवता लोग महिष को बहुत बड़ा शल्य—काँटा समझते थे) और इस अवसर पर देवी का नूपुर (पायल) ही वाचाल न हुआ (बज उठा); अपितु जय जयकार करता हुआ जगत भी वाचाल (मुखर) हुआ अर्थात् महिषासुर वध से सारा संसार जय बोल उठा ॥ १३ ॥

निर्यन्नानास्त्रशस्त्रावलि वलति वलं केवलं दानवानां
द्राङ् नीते दीर्घनिन्द्रां द्विषति न महीषीत्युच्यसे प्रायशोऽद्य ।
अस्त्रीसम्भाव्यवीर्या त्वमसि खलु मया नैवमाकारणीया
कात्यायन्यात्तकेलाविति हसति हरे ह्रीमती हन्त्वरीन्वः ॥१४॥

हास-परिहास की दशा में शिव के हँसने पर लज्जित हुई कात्यायनी आप लोगों के शत्रुओं को मारे । (यहाँ शंकर के हँसने का ढंग देखिये–)

आज तुम्हें 'महिषी' कहकर मैं नहीं पुकारूँगा, क्योंकि स्त्री में ऐसा पराक्रम संभव नहीं है परन्तु अतिशीघ्र शत्रु (महीष) को चिर निद्रा में ला देने पर (मौत के घाट उतार देने पर) यह (महिषी पद) तुममें ही सम्भव (सटीक) है। यद्यपि नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर दानवों का सैन्य बल स्वामी रहित होकर नाम-मात्र से आज भी इधर से उधर आ-जा रहा है। [और विधिवत अभिषेक वाली 'पट-रानी' (और पक्षान्तर में—भैंस) भी यहाँ है; फिर जो महिष (भैंसा) को मारती है वह कैसे 'महिषी' शब्द से कही जायेगी (पुकारी जायेगी) चूंकि महिषी महिष से हीन बलवाली होती है। तुम तो महिष से प्रायः करोड़ों गुना अधिक बलवाली हो अतः तुम्हें 'महिषी' नहीं कहूँगा तुम्हें 'भार्या' या 'स्त्री' शब्द से पुकारूँगा। लेकिन तुम तो पुरुषों की तरह चाल-चलन वाली इच्छा रखती हो, इस प्रकार शिव को हँसी-दिल्लगी हो रही है और इसी से कात्यायनी शर्मा गई है।]॥ १४ ॥

जाता किं ते हरे भीर्भवति महिषतो भीरवश्यं हरीणा-
मद्येन्दोर्द्वौ कलङ्कौ त्यजति पतिरपां धैर्यमालोक्य चन्द्रम्।
वायो कुप्यस्त्वयान्यो नय यम महिषादात्मयुग्यं ययारौ
पिष्टे नष्टं जहास द्युजनमिति जया सास्तु देवी श्रिये वः ॥१५॥

वह देवी आपकी शोभा बढ़ावे। (वह कैसी है ?) जिस (देवी) के द्वारा जब शत्रु (महिष नामक दैत्य युद्ध भूमि में) चूर चूर कर दिया गया तो जया देवी (दुर्गा की अंगरक्षिका) ने महिष के भय से भागने वाले इन्द्रादि देवताओं से इस प्रकार से उपहास किया—। हे विष्णु या इन्द्र ! तुम्हें भय क्यों हुआ, अथवा ऐसा होना उचित ही था; क्योंकि महिष (भैंसा) से घोड़ा (हरि) को भय होता ही है। फिर आज चन्द्रमा में दो लांछन लग गये। एक तो जन्मजात है, दूसरा महिष युद्ध में भागने से निन्दा रूप (कलंक) है ! इसी प्रकार वरुण (जल देवता) चन्द्र को नष्ट (क्षय) होते देखकर धैर्य छोड़ देता है, कातर

होता है (यह भी उचित ही है क्योंकि) समुद्र (जलपति) चन्द्रमा को देखकर धैर्य छोड़ देता है और तीर तक फैल जाता है (तट की ओर भाग जाता है)। हे वायुदेव! तुम तो दूसरे को कँपाने वाले हो, किन्तु आज स्वयं (भय) से काँप रहे हो और हे यमराज! इस महिष से तुम अपना वाहन (भैंसा) दूर हटालो क्योंकि एक भैंसा दूसरे भैंसा को देखकर (निश्चय ही) क्रोध (लड़ाई) करता है। इस प्रकार उपहास करने वाली वह देवी आप लोगों के मंगल के लिए होवे ॥ १५ ॥

शूलप्रोतादुपात्तप्लुतमहि महिपादुत्पतन्त्या स्रवन्त्या
वर्त्मन्यारज्यमाने सदपि मखभुजां जातसंध्याप्रमोहः।
नृत्यन्हासेन मत्वा विजयमहमहं मानयामीतिवादी
यामाश्लिष्य प्रनृत्तः पुनरपि पुरभित्पार्वती पातु सा वः ॥१६॥

वह पार्वती आप लोगों की रक्षा करे, जिसका नाचते हुए शिव ने आलिंगन कर फिर से नाचना आरम्भ किया। (नाचते हुए शिव की छटा देखिये—) उस समय देवमार्ग (आकाश) तक पृथिवी उछाल दी गई थी और त्रिशूल की मार से ऊपर उछल कर बहने वाली रक्त की धारा से लगता था जैसे संध्या की लाली चारों ओर छिटकी हो। (चूँकि संध्याकाल में शिव पार्वती के साथ नाचते हैं।) फिर यह मानकर (समझकर) कि हमारी प्रिया पत्नी पार्वती के शूल-प्रहार से मृत महिष से उत्पन्न खून की नदी से (ही) यह आकाश रंग गया है (अतः) यह संध्या काल नहीं हैं; फिर तो इस अट्टहास के द्वारा मैं इस विषय को अपनी ही विजय मानता हूँ, ऐसे हैं वाक्पटु शिव जिनकी प्रिया पार्वती आप सबकी रक्षा करें ॥ १६ ॥

नाकौकोनायकाद्यैर्द्युवसतिभिरसिश्यामधामा धरित्रीं
रुन्धन्वर्धिष्णुविन्ध्याचलचकितमनोवृत्तिभिर्वीक्षितो यः।

पादोत्पिष्टः स यस्या महिषसुररिपुर्नूपुरान्तावलम्बी
लेभे लोलेन्द्रनीलोपलशकलतुलां स्तादुमा सा श्रिये वः ॥१७॥

वह उमा आप लोगों के कल्याण के लिए होवे, जिस (देवी) के पैर से पिसा हुआ देवों का शत्रु महिष (देवी के) पायल का अवलम्बी होकर (पायल में लटक कर) चंचल नीलम (इन्द्रनील) पत्थर के टुकड़े की समता को धारण किया। वह तलवार की तरह साँवला था, स्वर्ग के निवासियों को तथा इन्द्रादि देवताओं को वह (महिष) पृथिवी को रुँधता-सा दिखाई पड़ा और उन देवताओं के मन में यह आश्चर्य पैदा हुआ कि कहीं विन्ध्याचल फिर से तो नहीं बढ़ा है अतः वे भयभीत हो गये थे ॥ १७ ॥

दुर्वारस्य द्युधाम्नां महिषितवपुषो विद्विषः पातु युष्मा-
न्पार्वत्या प्रेतपालस्वपुरुषपरुषः प्रेषितोऽसौ पृषत्कः।
यः कृत्वा लक्ष्यभेदं हृतभुवनभयो गां विभिद्य प्रविष्टः
पातालं :पक्षपालीपवनकृतपतत्ताक्ष्र्यशङ्काकुलाहिः ॥१८॥

महिष (दैत्य) के शरीर से द्वेष रखनेवाला पार्वती से प्रेषित (भेजा) वह बाण आप सब की रक्षा करे; जो (बाण) यमराज के दूतों की भाँति क्रूर-कठोर है, देवताओं के लिए भी दुर्जेय है, लक्ष्यस्थल—महिष को भेद करके भुवन का भय (भार) हरनेवाला है, (महिषासुर वध से संसार का भय दूर करने वाला है), वह (बाण) भूमि को भेद करके पाताल में घुस गया है और जिसने अपने पत्र-पंक्तियों (बाण में लगे परों) से हवा पैदा करके सर्पों के मन में गरुड़* की आशंका पैदा कर दी है तथा वे सब सर्प व्याकुल से हो गए हैं। (ऐसा पार्वती का बाण आप सब को बचावे) ॥ १८ ॥

---

* गरुड़ ने जब पाताल लोक में प्रवेश किया तब अपने पंखों के पवन से सर्पों को भयभीत कर दिया था।

वज्रं विनस्य हारे हरिकरगलितं कण्ठसूत्रे च चक्रं
केशान्बद्ध्वाब्धिपाशैर्धृतधनदगदा प्राक्प्रलीनान्विहस्य ।
देवानुत्सारणोत्का किल महिषहतौ मीलतो ह्रेपयन्ती
ह्रीमत्या हैमवत्या विमतिविहतये तर्जिता स्ताज्जया वः ॥१९॥

जया देवी आप लोगों की दुर्बुद्धि को दूर करे, जो लज्जाशील पार्वती से डाँटी-फटकारी गई है। (ऐसा क्यों ?) पहले पलायित (फिर) महिष वध होने पर मिलकर रहने वाले देवताओं को (वह जया) लज्जित करने वाली है। (क्या करके लज्जित करने वाली है—) (महिष के भय से इन्द्र के हाथ से च्युत वज्र को (अपने) हार में पिरोकर तथा विष्णु के हाथ से च्युत (गिरे हुए) चक्र को (अपने) कंठ-सूत्र में गूंथकर और वरुण के पाशों से अपने बालों को बाँधकर, जिसने कुबेर से गदा धरवा दिया (इससे कुबेर का अपमान हुआ); जो देवताओं को 'हटो-हटो' करने में उत्कण्ठा (लालसा) रखती है। [वह जया-देवी (दुर्गा की अंगरक्षिका) आपसबों की दुर्मति को दूर कर दे] ॥१६॥

खड्गे पानीयमाह्लादयति हि महिषं पक्षपाती पृषत्कः
शूलेनेशो यशोभाग्भवति परिलघुः स्याद्वधार्हेऽपि दण्डः ।
हित्वा हेतीरितीवाभिहतिवहलितप्राक्तनापाटलिम्ना
पार्ष्ण्यैव प्रोषितासुं सुररिपुमवतात्कुर्वती पार्वती वः ॥२०॥

अपनी एड़ी से ही महिष (दैत्य) को मारने वाली देवी पार्वती आप लोगों की रक्षा करे, जिस (एड़ी) की स्वाभाविक लाली महिष वध जनित रक्त से और अधिक घनीभूत (बढ़ी-चढ़ी) हो गई है। (एडी से ही क्यों वध किया, तो कहते हैं—) खड्ग-तलवार में पानी (धार) है अतः वह महिष को ही प्रसन्न करता है (वह पोषण करता है वध नही करता); बाण में पंख लगे हैं अतः वह पतनशील है अथवा महिष का पक्षपाती है, शूल से ईश (शिव) यश

के भागीदार बनते हैं यानी शिव ही शूली हैं अन्य नहीं। यदि महिष के ऊपर शूल चलाते हैं तो कहीं शूली (शिव) न हों, फिर वध करने योग्य में दण्ड शीघ्र होना ही चाहिए क्योंकि उठता हुआ (वर्धिष्णु) शत्रु उपेक्षा करने योग्य नहीं होता इसीलिए समस्त हथियारों (हेती) को छोड़कर देवी ने अपनी एड़ी से ही महिष को मार दिया ॥ २० ॥

कृत्वेदृक्कर्म लज्जाजननमनशने शक्र मासून्विहासी-
र्वित्तेश स्थाणुकण्ठे जहि गदमगदस्यायमेवोपयोगः।
जातश्चक्रिन्विचक्रो दितिज इति सुरांस्त्यक्तहेतीन्ब्रुवन्त्या
व्रीडां व्यापादितारिर्जयति विजयया नीयमाना भवानी ॥२१॥

विजया (पार्वती की सखी) ने शत्रु को (महिष को) मारा है इससे लज्जा अनुभव करने वाली भवानी जयकारी हो। (विजया कैसी है? इसे कहते हैं—) 'अपने हथियारों को छोड़ दो' ऐसा देवताओं से (बार-बार) कहने वाली है। (और किस प्रकार से कहा—) वज्र त्यागने वाले हे इन्द्र! ऐसा लज्जाजनक कर्म करके (युद्ध से भाग करके) अब भोजन छोड़कर प्राण मत दो, (चूँकि जो लज्जाजनक काम करता है वह भोजन छोड़कर प्राण त्यागता है। तुम भी वज्र त्यागने वाले हो अतः अनशनि हो।); हे वित्तेश-कुबेर! शिव के कण्ठ में रोग है उसे हटाओ। (क्योंकि तुम अगद-गदा रख देने वाले हो या रोग रहित हो अथवा स्वयं औषध या वैद्य स्वरूप हो अत एव अपने मित्र शिव के कंठ का रोग दूर करो।) हे चक्री-विष्णु! महिष (दैत्य) चक्र विहीन हो गया है, सैन्य रहित है; यानी जैसे आप चक्री होकर भी चक्र (सुदर्शन चक्र) छोड़ दिए वैसे ही यह महिष (दैत्य) भी चक्र रहित हो गया है। इस प्रकार अकर्मण्य देवताओं से हथियार रख देने के लिए कहने वाली विजया देवी है ॥२१॥

देयाद्वो वाञ्छितानि च्छलमयमहिषोत्पेषरोषानुषङ्गा-
न्नीतः पातालकुक्षिं हृतभुवनभयो भद्रकाल्याः स पादः।

य: प्रादक्षिण्यकाङ्क्षावलयितवपुषा वन्द्यमानो मुहूर्तं
शेषेणेवेन्दुकान्तोपलरचितमहानूपुराभोगलक्ष्मीः ॥२२॥

जो पैर छलमयी (मायावी) महिष को पिसने (रौंदकर समाप्त करने) से क्रोधित होकर पाताल की कोख (भीतर) में पहुँच गया है तथा भुवन के भय को हरने वाला है (ऐसा) भद्रकाली का वह चरण आप लोगों को वांछित (फल) दे। जो (चरण) चन्द्रकांत मणि के बने पायल से शोभमान है तथा प्रदक्षिणा (परिक्रमा) की कामना से वलयीकृत (गोलाकार पैर में लिपटा हुआ पायलरूपी) शरीर वाले (गेडुरी बाँधकर बैठे हुए) शेष नाग से क्षणभर मानो (वह चरण) वन्द्यमान होकर शोभा पा रहा है॥ २२॥

विशेष—यहाँ देवी का चरण पाताल में क्षणभर ठहरा था तो पैरों में पड़े चन्द्रकान्त के बने पायल में ही शेष (नाग) के शरीर की उत्प्रेक्षा (कल्पना) की गई है 'इव' पद के द्वारा; क्योंकि शेषनाग भी वहाँ कुण्डलित होकर बैठे हुए हैं और यहाँ (देवी के पैर में) पायल भी वलयाकार (वृत्त) शरीर से स्थित है।

शूलं तूलं नु गाढं प्रहर हर हृषीकेश केशोऽपि वक्र-
श्चक्रेणाकारि किं मे पविरवति नहि त्वाष्ट्रशत्रो ध्रुराष्ट्रम्।
पाशाः केशाब्जनालान्यनल न लभसे भातुमित्यात्तदर्पं
जल्पन्देवान्दिवौकोरिपुरवधि यया सास्तु शान्त्यै शिवा वः २३

जो देवताओं का शत्रु था तथा मतवाला होकर देवताओं को भी इस तरह अण्डबण्ड बकने वाला था उस महिष को जिस (देवी) ने मारडाला वह शिवा देवी आप लोगों को शान्ति दे। (महिषासुर का देवताओं के प्रति बक-झक इस प्रकार है—) हे हर, तुम्हारा त्रिशूल कपास की भांति हलका (मुंह से फूँकने पर मानो उड़ने वाला) हो गया है क्या, (अत: कोई) वजनदार हथियार लेकर प्रहार करो;

ऐ हृषिकेश विष्णु ! तुम्हारे (कुटिल) चक्र (सुदर्शन) लेने से क्या हुआ, क्या वह (चक्र) मेरा बाल भी बाँका (टेढ़ा) कर दिया ? (अर्थात् नहीं), ऐ इन्द्र ! तेरा वज्र भी स्वर्ग की रक्षा नहीं कर रहा है, अरे वरुण, तेरा पाश तो कमल की डण्ठल (नाल) की तरह अति कोमल है (अतः बेकार है), ऐ अग्नि, तुम तो (जरा भी) प्रज्वलित (चमक) नहीं हो (यानी मेरी प्रभा से तुम मन्द निराश) (हत) हो गए हो ॥ २३ ॥

विशेष—इस प्रकार से वह महिष मदोन्मत्त होकर देवताओं की हँसी उड़ाता था। ऐसे दुर्दान्त महिष दैत्य को जिस देवी ने वध किया वह कल्याणी शिव-पत्नी आप लोगों के चित्त को शान्ति दे।

> शार्ङ्गिन्वाणं विमुञ्च भ्रमसि बलिरसौ संयतः केन बाणो
> गोत्रारे हन्म्यहं ते रिपुममररिपुस्त्वेष गोत्रस्य शत्रुः ।
> दैत्या व्यापाद्यतां द्रागज इव महिषो हन्यते मन्महेऽद्ये-
> त्युत्प्रास्योमा पुरस्तादनु दनुजतनुं मृद्नती त्रायतां वः ॥२४॥

हे विष्णु ! तुम बाण रख दो, या बाणासुर दैत्य को छोड़ दो; वह बलि (दैत्य) है यह तुम भ्रम में हो, उस बाणासुर को किसने परास्त किया ? (चूँकि तुम बलि को बाँधने वाले) छलने वाले हो (अतः बाणासुर को छोड़ना उचित ही है।) हे गोत्रारि इन्द्र ! तेरे शत्रु को मैं मारती हूँ क्योंकि महिष अपने गोत्र (वंश या कुल) का ही शत्रु है। (भैंसे को देखकर भैंसा क्रोधित होता है अथवा देव और दैत्य दोनों कश्यप ऋषि के सन्तान हैं अतः दोनों सगोत्री हुए) अतः यह महिष (दैत्य) भी गोत्रारि है। (इन्द्र का नाम भी गोत्रारि है) फिर तो गोतिया को देखकर गोतिया जलता ही है अतः इसे मैं मारूँगी। दैत्य भी देवी के द्वारा अनुशासित (दण्डित) है (इसीलिए देवी दैत्यों को आदेश देती है कि—) हे दैत्यों ! मेरे उत्सव में (देवी के अनुष्ठान पूजन में) (छाग बकरा) की भाँति यह महिष बलि देने

योग्य है (मारने लायक है) इसलिए यह महिष (भैंसा) आज शीघ्रातिशीघ्र मार दिया जाना चाहिए। इस प्रकार से पहले देवों को उपहास करके, फिर बाद में महिष (दैत्य) के देह को माटी की तरह रौंद कर मसलती (चूरन-सा बनाती) हुई उमा देवी आप लोगों की रक्षा करे ॥ २४ ॥

विशेष—बाणासुर बहुत बलवान राक्षस था। यह बलि का बेटा था। शिव भक्त भी था। कार्तिकेय के जन्म के बाद इन्द्र का वज्र इसके ऊपर गिरा था और वह सदा के लिए समाप्त हो गया। वामन रूप धारण करके विष्णु ने बलि को छला था। इन्द्र का गोत्रारि नाम इसलिए था कि वह गोत्र—पर्वतों के पंख को काट दिया था। देवी पर्व में—जैसे शारदीय या वासन्तिक नवरात्र अथवा विशेष देवी अनुष्ठान में बकरे की बलि दी जाती है साथ ही भैंसे की बलि भी दी जाती है; कुछ विशेष मनौती में भैंसे के कान काट करके छोड़ दिए जाते हैं।

स्पर्धावर्धितविन्ध्यदुर्भरभरव्यस्ताद्विहायस्तलं
हस्तादुत्पतिता प्रसादयतु वः कृत्यानि कात्यायनी।
यां शूलामिव देवदारुघटितां स्कन्धेन मोहान्धधी-
र्वध्योद्देशमशेषबान्धवकुलध्वंसाय कंसोऽनयत् ॥२५॥

स्पर्धा (अपने बल-पौरुष से दूसरे को हेठा करने की इच्छा से) बढ़ा हुआ (ऊँचा उठा हुआ) विन्ध्याचल की भाँति दुर्भर भार के कारण जो (कंस के) हाथ से छूट करके आकाश में ऊपर की ओर चली गई थी वह कात्यायनी आप लोगों के कार्यों को प्रसन्न होकर पूरा करे। जिस कात्यायनी को तथा उसके समस्त बान्धव कुल को विध्वंस करने के लिए महान्धमति कंस ने देवदारु निर्मित शूल की तरह अपने कंधे से (ढोकर के) मारने की नियत (उद्देश्य) से वध्यभूमि में लाया था ॥ २५ ॥

विशेष—श्रीमद्भागवत के अनुसार कंस अपनी बहन देवकी के

सात पुत्रों का वध करने के बाद आठवें गर्भ में उत्पन्न श्रीकृष्ण को भी मारना चाहता था परन्तु वह इस कार्य में सफल नहीं हुआ। ईश्वर की माया यशोदा के गर्भ में लड़की होकर आई थी वही कंस के हाथ लगी, क्योंकि देवकी के प्रसव गृह में वही बालिका मिली थी। कंस उस नवजात शिशु को हाथ में लेकर ज्योंहि पटककर मारना चाहा त्योंही वह बालिका हाथ से छूट कर आकाश में दिव्य ज्योति रूप में खिल गई फिर तो आकाशवाणी हुई कि अरे दुष्ट, तेरा मारने वाला अन्यत्र जिन्दा है। इस प्रकार वह देवी हमारे पुण्य से विन्ध्यवासिनी देवी के रूप में पूजित हुई और इन्हीं का कात्यायनी देवी के नाम से पुराणकार ने उल्लेख अन्यत्र किया। श्रीकृष्ण भगवान् यशोदा मैया तथा नंदबाबा के संरक्षण में लालित-पालित हुए थे, यह भागवत से अधिक ज्ञात होगा।

तूर्णं तोषात्तुरापाट्प्रभृतिषु शमिते शात्रवे स्तोत्रकृत्सु
क्रान्तेवोपेत्य पत्युस्ततभुजयुगलस्यालमालम्बनाय।
देहार्धे गेहबुद्धिं प्रतिविहितवती लज्जयालीय काली
कृच्छ्रं वोऽनिच्छयैवापतितघनतराश्लेषसौख्या विहन्तु ॥२६॥

महिष जनित भय शान्त होने पर इन्द्रादि देवताओं ने शीघ्र संतुष्ट होकर (देवी का) स्तवन किया तो इससे देवी लजाकरके (क्योंकि महान् व्यक्ति को प्रत्यक्ष प्रशंसा से लज्जा होती है।) अपने पति (शिव) के आधे देह में घर समझकर घुसनेवाली (निवास करनेवाली) वह काली आप लोगों के कष्टों का विनाश करे; जो (देवी महिष वध से) थकी हुई है अतः मानों कोई पास में सहारा ढूँढ़ती हो, फिर तो उसे (शिव का) बाहुपाश ही एकमात्र सहारा है, और जहाँ बिना चाहे ही दृढ़ आलिंगन का सुख भी उसे प्राप्त हो गया है॥ २६॥

आस्तां मुग्धेऽर्धचन्द्रः क्षिप सुरसरितं या सपत्नी भवत्या
क्रीडा द्वाभ्यां विमुञ्चापरमलममुनैकेन मे पाशकेन।

शूलं प्रागेव लग्नं शिरसि यदबला युध्यसेऽस्याद्विदग्धं
सोत्प्रासालापपातैरिति दनुजममुमा निर्दहन्ती दृशा वः ॥२७॥

हे मुग्धे ! अर्धचन्द्र (नामक बाण) को रहने दो (क्योंकि यह बेचारा तुम्हारे पति (शिव) के माथे पर रहता है) ; गंगा को भी उछाल (भगा) दो (क्योंकि वह तुम्हारी सौत है); एक ही पास (अन्यत्र जुआ का अक्षक) मेरे लिए पर्याप्त है; तुम दूसरे पास को छोड़ो (क्योंकि जुआ का खेल दो से ही संभव है एक से कभी नहीं) ; तुम शूल (हथियार) को क्यों (मुझ पर) छोड़ती हो ; क्योंकि मेरे सिर में पहले से ही शूल रोग लगा है क्योंकि मेरे साथ एक अबला (स्त्री, अन्यत्र सैन्य रहित मात्र स्त्री) लड़ती है और मैं सेनाओं के साथ लड़ रहा हूँ यही अयशी (अकीर्तिकर) शूल मेरे सिर में लगा है। इस प्रकार उत्तेजनापूर्ण बातचीत (आलापों) से ग्रस्त (कारण) चतुर (विदग्ध) महिष को अपनी दृष्टिमात्र से जलाती हुई उमा देवी आप लोगों की रक्षा करे॥ २७॥

वक्त्राणां विक्लवः किं वहसि बत रुचं स्कन्द षण्णां विषण्णा-
मन्या षण्मातरस्ते भव भव सकलस्त्वं शरीरार्धलब्ध्या।
जिह्मां हन्म्यद्य कालीमिति सममसुभिः कण्ठतो निर्गता गी-
र्गीर्वाणारेर्ययेच्छामृदुपदमृदितस्याद्रिजा सावताद्वः ॥२८॥

वह शक्ति पुञ्ज पार्वती आप लोगों की रक्षा करे, जिसकी इच्छा मात्र से कोमल चरण के पड़ते ही चूर्ण (पिस गए) हुए महिष के कण्ठ से प्राणों के साथ (-साथ) इस प्रकार की वाणी निकली—हे स्कन्द ! (कार्तिकेय !) तुम व्याकुल होकर छः मुख की शोभा को खेदपूर्वक क्यों धारण करते हो, (क्योंकि—कृत्तिका आदि अन्य छः माताएँ तो जीवित बची हैं अतः इनमें से एक पार्वती के मरने से तुम दुखी मत होना।) ; और हे शिव ! तुम तो शरीर से आधे ही हो (पूर्ण कहाँ हो,

क्योंकि पार्वती ने शिव के आधे शरीर को ले लिया हैं); अब तुम सम्पूर्ण शरीर वाले हो जाओ। आज मैं इस दुष्टा काली को मारता हूँ। (यह कुटिल और काली हैं) परन्तु तुम बड़े सरल (भोलेबाबा) हो और गौर वर्ण के हो, अतः तुम दोनों में कोई बढ़िया मेल नहीं है। आज इसके नाश से तुम्हें सम्पूर्ण शरीर की उपलब्धि हो सकती है। अतः इस कुरूप काली को मारूँगा, यह भाव है ॥ २८ ॥

गाहस्व व्योममार्गं गतमहिषभयैर्ब्रध्न विश्रब्धमश्वैः
शृङ्गाभ्यां विश्वकर्मन्घटयसि न नवं शार्ङ्गिणः शार्ङ्गमन्यत्।
ऐभी त्वङ्निष्ठुरेयं बिभृहि मृदुमिमामीश्वरेत्यात्तहासा
गौरी वोऽव्यात्क्षतारिः स्वचरणगरिमग्रस्तगीर्वाणगर्वा ॥२९॥

हे सूर्य ! तुम महिष (भैंसे) के भय से मुक्त अपने (रथ के) घोड़ों के साथ आकाश मार्ग में विश्वासपूर्वक बढ़ते चलो, हे विश्वकर्मा, (तुम) महिष को इन सींगों से विष्णु का कोई नया शार्ङ्ग धनुष तो नहीं बनाओगे ? (बना रहे हो ?); (क्योंकि इस पुराने धनुष से क्या प्रयोजन ? (यह काकुवाक्य है यानी कुछ भी इससे काम बनने वाला नहीं है); हे ईश्वर ! महादेव शिव ! यह गजासुर का खाल (चर्म) कठोर—कड़ा-रूखरा हो गया है (अतः तुम भी) भैंसे का (मुलायम) चमड़ा धारण करो (ओढ़ो)। इस प्रकार से मज़ाक करने वाली (वह) गौरी देवी आप लोगों की रक्षा करे; जिसने अपने पैरों से शत्रु (महिष) को नष्ट किया; (साथ ही उसने अपने चरणों की गरिमा से देवताओं के भी गर्व को विनष्ट किया है। [यानी जो कार्य शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित देवता लोग नहीं कर सके उस कार्य को देवी ने अपने चरण चाप से पूरा कर दिया] ॥ २९ ॥

क्षिप्तो बाणः कृतस्ते त्रिकविनतिततो निर्वलिर्मध्यदेशः
प्रह्लादो नूपुरस्य क्षतरिपुशिरसः पादपातैर्दिशोऽगात्।

सङ्ग्रामे संनताङ्गि व्यथयसि महिषं नैकमन्यानपि त्वं
ये युध्यन्तेऽत्र नैवेत्यवतु पतिपरीहासहृष्टा शिवा वः ॥३०॥

हे सन्नताङ्गि ! (अति झुके अंगोंवाली !) ऐसा नहीं कि तुम युद्ध में एक मात्र महिष को ही व्यथित करती हो, अपितु अन्यों को भी जो यहाँ (तुम्हारे साथ में) युद्ध नहीं कर रहे हैं उन्हें भी तू पीडित करती हो, सताती हो। (सो कैसे ?—) इधर युद्ध में बाण फेंका गया (उधर पक्षान्तर में—बाणासुर को गले में हाथ लगाकर बाहर कर दिया गया) तुम्हारा मध्य भाग अपने अधोभाग सहित पीठ के भाग (त्रिक) को अत्यन्त (बेंत की तरह) झुका देने से त्रिवलि रहित (निर्बलि) हो गया है (पक्षान्तर में—राजा बलि दैत्य से रहित भूतल हो गया है); शत्रु के सिर को फोड़ने वाले (तुम्हारे) पायल की झनकार (शब्द) पैर पटकने पर (शत्रु पर) दशो दिशाओं में फैल गया (पक्षान्तर में—प्रह्लाद नाम का दैत्य भी मारा गया) [अर्थात् तुम्हारे इस युद्ध में बाण, बलि और प्रह्लाद-ये तीनों नहीं रहे। अतः आप उन्हें भी व्यथित करती हैं—यह परिहास—मजाक है।] इस प्रकार पति (शिव) के साथ मजाक करने से प्रसन्न पार्वती (शिवा) आप लोगों की रक्षा करे ॥ ३० ॥

विशेष—इस श्लोक में देवी को सम्बोधित करते संनताङ्गि शब्द का प्रयोग हुआ है। भरत के नाट्यशास्त्र में 'सन्नत' मुद्रा (करण) इस प्रकार है:—

'यदि एक उछाल लेकर दोनों पैरों को स्वस्तिक बना सामने की ओर रखे और दोनों हाथ 'सन्नत' (दोला) मुद्रा में रखे तो उसे 'सन्नत' करण कहते हैं'—

उत्प्लुत्य चरणौ कार्यावग्रतः स्वस्तिकस्थितौ।
सन्नतौ च तथा हस्तौ सन्नतं तदुदाहृतम् ॥

(हिन्दी नाट्यशास्त्र-अ० ५; श्लो० १३५. चौ० संस्करण)

मेरौ मे रौद्रशृङ्गक्षतवपुषि रुषो नैव नीता नदीनां
भर्तारो रिक्ततां यत्तदपि हितमभून्निःसपत्नोऽत्र कोऽपि ।
एतन्नो मृष्यते यन्महिष कलुषिता स्वर्धुनी मूर्ध्नि मान्या
शम्भोर्भिन्द्याद्धसन्ती पतिमिति शमितारातिरीतीरुमा वः ॥३१॥

हे महिष ! मेरु में, जहाँ तेरे प्रचंड सींग से ही घाव हो गया है (अतः वहाँ) मेरा रोष (क्रोध) नहीं है; नदियों के पति समुद्र को (तूने) रीता (खाली समाप्त) कर दिया, वह भी हितकारक हुआ, (अतः वहाँ भी मेरा क्रोध नहीं है) ! क्योंकि इस युद्ध में कोई भी तो शत्रु रहित हुआ यानी सौत पालने वाला कोई भी तो समाप्त हुआ। [समुद्र और महादेव दोनों गंगापति हैं, यानी गंगा शिव की भी और समुद्र की भी हैं तो तुमने समुद्र को सुखा दिया तो अब एकमात्र गंगा के पति शिव बच गए] परन्तु यह तो कभी क्षमा करने योग्य नहीं है कि शंभु के माथे पर रहने वाली माननीया (पूज्या) गंगा कलंकित हो। परन्तु खेद है कि वह (गंगा) भी पर-पुरुष के संसर्ग से कलुषित हो गई है—इस प्रकार अपने पतिदेव (महादेव) को (लक्ष्य करके) हँसने वाली पार्वती आपलोगों के उपद्रवों को छिन्न-भिन्न (नाश) करे जिन्होंने शत्रु को सदा के लिए शान्त (समाप्त) कर दिया है ॥ ३१ ॥

सद्यः साधितसाध्यमुद्धृतवती शूलं शिवा पातु वः
पादप्रान्तविषक्त एव महिषाकारे सुरद्वेषिणि ।
दिष्ट्या देव वृषध्वजो यदि भवानेषापि नः स्वामिनी
संजाता महिषध्वजेति जयया केलौ कृतेऽर्धस्मिता ॥३२॥

(देवी दुर्गा के) चरण के तलवे के (पैर के अंगूठे के) नीचे देवशत्रु महिष के बैठने पर ही कृतार्थ हुए त्रिशुल को (ऊपर की ओर) धारण करने वाली तथा केलि (क्रीड़ा) में जया के द्वारा मजाक करने पर मुसकराने वाली शिवा (पार्वती) आपलोगों की रक्षा करे।

(जया देवी का मजाक किस प्रकार है—) हे देव! यदि आप 'वृषभध्वज' हैं तो यह हमारी मालकिन पार्वती भी सौभाग्य वश 'महिषध्वजा' है। आप दोनों की जोड़ी अच्छी मिली है कि दोनों (प्राणी) 'पशुध्वज' हो गए (ध्वजा में पशु के चिह्न लग गए।) आप बैल पर चढ़े हैं तो यह महिष (भैंसा) पर चढ़ी (सवार) हैं (इस प्रकार यह परिहास हुआ)॥ ३२ ॥

विद्राणेन्द्राणि किं त्वं द्रविणददयिते पश्य संख्यं स्वसख्याः
स्वाहे स्वस्था स्वभर्तर्यमृतभुजि मुधा रोहिणी रोदितीव।
लक्ष्मि श्रीवत्सलक्ष्मोरसि वससि पुरेत्यार्तमाश्वासयन्त्यां
स्वर्गस्त्रैणं जयायां जयति हतरिपोर्हेपितं हैमवत्या ॥३३॥

पीड़ित स्वर्गीय स्त्रीसमूह को (इन्द्रादि देवताओं की पत्नियों को) जया के द्वारा इस प्रकार आश्वासन दिये जाने पर शत्रु वध करने वाली पार्वती का लज्जाभाव जयशाली होवे। (लज्जा का कारण क्या है ?—) हे इन्द्राणी, तूँ क्यों म्लान हो गई, हे कुबेर-पत्नी, अपनी सखी का युद्ध देखो, हे स्वाहा, अग्निप्रिये ! तू अमृतभोजी अपने पतिदेव (अग्निदेव) में स्वस्थ रहो, यानी अब महिष वध हो चुका, ब्राह्मणदेव प्रसन्नता पूर्वक आग में आहुती डालेगें। हे रोहिणी (चन्द्रभार्या), व्यर्थ ही रोती हो, हे लक्ष्मी, विष्णु के वक्षस्थल पर (छाती पर) पहले की भाँति विश्राम करो। ये सब देवस्त्रियों का आश्वासन सुन कर देवीपार्वती लजा गई (अतः वह लज्जा आप सब के लिए कल्याणकारी हो)॥ ३३ ॥

निर्वाणः किं त्वमेको रणशिरसि शिखिञ्शार्ङ्गधन्वापि विध्यं-
स्तत्ते धैर्यं क यातं- जहिहि जलपते दीनतां त्वं न दीनः।
शक्तो नो शत्रुभङ्गे भयपिशुन सुनासीर नासीरधूलि-
र्धिग्यासि केति जल्पन्त्रिपुरवधि यया पार्वती पातु सा वः ॥३४॥

हे अग्नि ! क्या तू ही एक इस रण के मैदान में शान्त हो; किन्तु विष्णु भी विन्ध्यरूपी बाणों को छोड़ करके शान्त हैं (बाण रहित हैं), हे वरुण, तुम्हारा धैर्य कहाँ गया ! दीनता छोड़ो; क्योंकि तुम दीन नहीं हो अपितु नदियों के पति हो (प्रभु) हो, हे भयसूचक इन्द्र ! तुम्हारी सेना द्वारा उड़ाई गई धूल (अब) शत्रुओं के (मान) भङ्ग में समर्थ नहीं है अतः तुम्हें धिक्कार है, तुम (इधर उधर) कहाँ जा रहे हो ? (अर्थात् जिस प्रकार पहले तुम्हारी सेना से उठी धूल मात्र को देखकर शत्रुगण भाग जाते थे वैसा आज नहीं हो रहा है फलतः जहाँ जा रहे हो वहीं मार (हार) खा रहे हो । इस प्रकार बड़बड़ाते हुए शत्रु (महिष) को जिसने मार डाला वह पार्वती आप लोगों की रक्षा करे ।। ३४ ।।

नन्दिन्नानन्ददो मे तव मुरजमृदुः सम्प्रहारे प्रहारः
किं दन्ते रोम्णि रुग्णे व्रजसि गजमुख त्वं वशीभूत एव ।
निघ्नन्निघ्नन्निदानीं द्युजनमिह महाकाल एकोऽस्मि नान्यः
कन्याद्रेर्दैत्यमित्थं प्रमथपरिभवे मृद्नती त्रायतां वः ॥३५॥

हे नन्दी ! युद्ध में तुम्हारा प्रहार मेरा आनन्द बढ़ाने वाला है, क्योंकि वह मृदङ्ग की ध्वनि की तरह कोमल है । हे गणेश ! रोआँ बराबर दाँत के टूट जाने पर तुम क्यों (भागकर) जा रहे हो क्योंकि (तू) पलायित होकर भी वशीभूत हो (क्योंकि लम्बा पेट वाला दूर तक भागने में असमर्थ होता है) । इन्द्रादि देवों को भी अतिशय चोट पहुँचाने वाला मैं ही एकमात्र महाकाल हूँ, दूसरा नहीं । इस प्रकार अपने पार्षदों का पराभव होने पर दैत्य को (महिषासुर को) धूर चटाती हुई (माटी की लोंद की तरह मसलती हुई) अद्रिकन्या पार्वती आप लोगों की रक्षा करे ।। ३५ ।।

वज्रं मज्ञो मरुत्वानरि हरिरुरसः शूलमीशः शिरस्तो
दण्डं तुण्डात्कृतान्तस्त्वरितगतिगदामस्थितोऽर्थाधिनाथः ।

प्रापन्यत्पादपिष्टे द्विषि महिषवपुष्यङ्गलग्नानि भूयोऽ-
प्यायूंषीवायुधानि द्युवसतय इति स्तादुमा सा श्रिये वः ॥३६॥

शत्रु महिष का शरीर देवी के चरणों से चूर-चूर हो जाने पर इन्द्रादि देवों ने (महिष के) शरीर में लगे (घुसे) हुए आयुधों को अपनी अपनी आयु की भाँति उसे फिर से प्राप्त किया (अतः) वह उमा आप सबके लिए मंगलकारी होवे। (किस प्रकार प्राप्त किये इसे कहते हैं—) मज्जाधातु से इन्द्र ने वज्र प्राप्त किया, विष्णु ने उसकी छाती से अपना चक्र प्राप्त किया, शिव ने सिर से शूल प्राप्त किया, यमराज ने मुख से दण्ड प्राप्त किया और कुवेर ने हड्डी से शीघ्रगामी गदा प्राप्त किया ॥३६॥

दृष्टावासक्तदृष्टिः प्रथममिव तथा संमुखीनाभिमुख्ये
स्मेरा हासप्रगल्भे प्रियवचसि कृतश्रोत्रपेयाधिकोक्तिः।
उद्युक्ता नर्मकर्मण्यवतु पशुपतौ पूर्ववत्पार्वती वः
कुर्वाणा सर्वमीषद्विनिहितचरणालक्तकेव क्षतारिः ॥३७॥

पशुपति (महिष, अन्यत्र शिव) में सब कुछ (नर्म कर्म, अन्यत्र युद्ध कर्म) आभासमात्र करने वाली पार्वती आपलोगों की रक्षा करे। (जिस प्रकार शिव में सम्पूर्ण नर्म-कर्मों को पूरी तरह करती थी वैसा महिष (युद्ध) में नहीं, किन्तु थोड़ा सा—यानी उसकी झलक भर देखा देती थीं।) महिष की दृष्टि में जिसकी दृष्टि लगी है, उसके सामने मानो पहली बार आई हुई है, हासप्रगल्भ में मन्द मुस्कान करती है, प्रिय वचन में कर्णप्रिय अधिकाधिक बातें (उक्ति) करती है जिसने शत्रु (महिष) को मार दिया है अत एव (उसके रक्त से ही) मानो अपने चरणों में महावर लगाती है (इस प्रकार पहले की तरह जैसे शिव में नर्म-कर्म सम्पन्न करती थी वैसे ही परन्तु बहुत ही कम मात्रा में इस महिष में पार्वती ने नर्म-कर्म सम्पन्न किया ॥ ३७ ॥

विशेषः—साहित्यशास्त्र में नर्म-कर्म के विषय में निम्नोक्त विवरण

है:—'नर्म' वह है जिसमें बहुविध क्रीड़ाविलास होता है तथा प्रियजन का मनोरंजन होवे—

'वैदग्ध्यक्रीड़ितं नर्म ।'—सा. द. पृ. ४५७.

भरत मुनि ने 'नर्म' का लक्षण इस प्रकार किया है—

'अस्थापितशृङ्गारं विशुद्धकरणं निवृत्तवीररसम् ।
हास्यप्रवचनबहुलं नर्म त्रिविधं विजानीयात् ॥
ईर्ष्याक्रोधप्रायं सोपालम्भकरणानुविद्धञ्च ।
आत्मोपक्षेपकृतं सविप्रलम्भं स्मृतं नर्म ॥"
(नाट्यशास्त्र: २०. ५७. ५८)

दैत्यो दोर्दर्पशाली नहि महिषवपुः कल्पनीयाभ्युपायो
वायो वारीश विष्णो वृषगमन वृषन् किं विषादो वृथैव ।
बध्नीत ब्रध्नमिश्राः कवचमचकिताश्चित्रभानो दहारी-
नेवं देवाञ्जयोक्ते जयति हतरिपोर्ह्रेपितं हैमवत्याः ॥३८॥

देवताओं से जया (देवी) ने ऐसा कहा और महिषासुर मर्दिनी पार्वती को उससे लज्जा हुई वह लज्जाभाव हम सबके लिए जयशाली होवे। (क्यों लज्जा हुई इसे कहते हैं—) हे वायु, हे वरुण (वारीश), हे विष्णु, हे शिव, हे इन्द्र ! महिषासुर दैत्य है, भुजाओं में बल होने से घमण्डी है अतः समादि (समझौता आदि) उपाय से साध्य नहीं है, आपलोग व्यर्थ ही विषाद (पश्चात्ताप) करते हैं। इसलिए आप लोग सूर्य सहित बेखटक कवच को बाँध लीजिये, तैयार होइये। हे अग्नि ! शत्रु को भस्म करो (इस प्रकार देवताओं से जया ने जब कहा तो पार्वती को यह सब देख-सुनकर लज्जा हुई।) ॥ ३८ ॥

आ व्योमव्यापिसीम्नां वनमतिगहनं गाहमानो भुजाना-
मर्चिर्मोक्षेण मूर्च्छन्दवदहनरुचां लोचनानां त्रयस्य ।

यस्या निर्मज्जमज्जच्चरणभरनतो गां विभिद्य प्रविष्टः
पातालं पङ्कपातोन्मुख इव महिषः स्तादुमा सा श्रिये वः ॥३९॥

जिसके (देवीं दुर्गा के) चरणों के भार से झुका, मज्जाहीन अतः दबता-सा वह महिष (महिषासुर दैत्य, पक्ष में—भैंसा) मानो पृथ्वी को फाड़कर पाँक की ओर जाने के लिए ही उतावला हो पाताल में घुस गया है। ऐसी वह उमा (पार्वती) आपलोगों को श्री दे। (महिष कैसा है इसे कहते हैं—) तथा आकाश तक फैलने वाली देवी की भुजलता रूपी अति सघन वन की थाह लेने वाला है, दानव रूपी दव जंगल को जलाने की रुचि जिन्हें है ऐसी देवी की तीनों आँखों की धधकती अग्नि ज्वालाओं से जो झुलसा हुआ है (जैसे वन में घूमता हुआ वनाग्नि से दग्ध कोई महिष—भैंसा कीचड़ में लोट-पोट करने के लिए गढा में घुसता है वैसे ही यह महिषासुर दैत्य भी देवी के लोचनाग्नि से जलाया हुआ पाताल लोक में प्रविष्ट हुआ) ॥ ३६ ॥

नीते निर्व्याजदीर्घां मघवति मघवद्वज्रलज्जानिदाने
निद्रां द्रागेव देवद्विषि मुषितरुषः संस्मरन्त्याः स्वभावम् ।
देव्या दृग्भ्यस्तिसृभ्यस्त्रय इव गलिता राशयो रक्तताया-
स्त्रायन्तां वस्त्रिशूलक्षतकुहरभुवो लोहिताम्भःसमुद्राः ॥४०॥

जिसके त्रिशूल के प्रहार से ही पृथिवी में छेद (गढे) हो गये हैं समुद्र के समस्त जल राशि रुधिर रूप में हैं (अतः ये) समस्त रक्त राशिमय समुद्र आप सबकी रक्षा करे। (ऐसा क्यों है ? उसे उत्प्रेक्षा में बताते हैं—) इन्द्र के वज्र को लज्जा का कारण बना हुआ पापी महिष (दैत्य) को शीघ्र ही स्वाभाविक चिर निद्रा में (मृत्यु) होने पर (देवी) का क्रोध शान्त हो गया अतएव स्वभाव को स्मरण करने वाली देवी के तीनों आखों से निकली तीन रक्त की राशियाँ मानो भूमि पर द्रवित है अर्थात् क्रोध न होने से देवी के नयनों से लाली भी

साम्र हो गई है वह क्रोध ही मानो रुधिरमय समुद्र के रूप में परिणत हो गए हैं (अतः वे आपकी रक्षा करें ।) ॥ ४० ॥

काली कल्पान्तकालाकुलमिव सकलं लोकमालोक्य पूर्वं
पश्चाच्छ्लिष्टे विषाणे विदितदितिसुता लोहिता मत्सरेण ।
पादोत्पिष्टे परासौ निपतति महिषे प्राक्स्वभावेन गौरी
गौरी वः पातु पत्युः प्रतिनयनमिवाविष्कृतान्योन्यरूपा ॥४१॥

अपने पति शिव के तीनो नयनों को अपने में प्रचलित (आविष्कार) करने वाली अर्थात् शिवस्वरूप को धारने वाली वह गौरी (पार्वती) आपलोगों की रक्षा करे। (वह कैसी है इसे कहते हैं—) महिषासुर के उपद्रवों की बाढ़ से मानो संसार में प्रलय मच गया तथा उससे व्याकुल समस्त देवलोक को देखकर देवी काली (झवाँन) हो गई है, बाद में यह मालूम होने पर कि ये खुराफाती दैत्य हैं तो वह (क्रोध से) रक्त (लाल) हो गई तथा (वह लाली) महिषासुर दैत्य के सिंगो में लगकर यह प्रतीति कराने लगी; फिर जब वह दैत्य (देवी) के चरणों से चूर-चूर होकर तथा प्राणहीन हो भूलुंठित हो गया तो वह देवी पुनः अपनी पूर्वावस्था में—गौरी रूप हो गई। इस प्रकार तीन रूपों वाली देवी महादेव के तीन नयनों से समता करने वाली हुई) ॥ ४१ ॥

गम्यं नाग्नेर्न चेन्दोः सपदि दिनकृतां द्वादशानामसह्यं
शक्रस्याक्ष्णां सहस्रं सह सुरसदसा सादयन्तं प्रसह्य ।
उत्पातोग्रान्धकारागममिव महिषं निघ्नती शर्म दिश्या-
द्देवी वो वामपादाम्बुरुहनखमयैः पञ्चभिश्चन्द्रमोभिः ॥४२॥

(देवी के) वाम चरण कमलों के पंच नख स्वरूप पाँचों चन्द्रमा के द्वारा घोर अन्धकार की भाँति उत्पाती महिष (दैत्य) को मारने

वाली देवी (दुर्गा) आप लोगों को सुख देवे। (महिषासुर कैसा है इसे कहते हैं—) जो अग्नि से भी अगम्य है, तिरस्कार करने योग्य नहीं है, जो सोलहों कला से युक्त चन्द्रमा के भी बलबूता (प्रभाव) से परे है, एक साथ बारहो कलाओं से उगने वाले सूर्य के लिए भी जो असह्य है और देवताओं की सभा (मंडली) के साथ विराजमान इन्द्र के हजारों आखों की ज्योति को बल पूर्वक म्लान करने वाला है ॥ ४२ ॥

विशेष—महिष काला है अतः अन्धकार के रूप में वर्णित हुआ है, अन्धकार का विनाश चन्द्रमा से होता है। यहाँ देवी के पाँचो नख की कांति में पाँच चन्द्रमा का आरोप किया गया है अतः रूपकालंकार है।

दत्त्वा स्थूलान्त्रमालावलिविघसहसच्छस्मरप्रेतकान्तं
कात्यायन्यात्मनैव त्रिदशरिपुमहादैत्यदेहोपहारम्।
विश्रान्त्यै पातु युष्मान्क्षणमुपरि धृतं केसरिस्कन्धभित्ते-
र्बिभ्रत्तत्केसरालीमलिमुखररणन्नूपुरं पादपद्मम् ॥४३॥

कात्यायनी देवी के द्वारा केशरी (सिंह) के कन्धे पर क्षणभर विश्राम के लिए रखा हुआ वह चरण कमल आप लोगों की रक्षा करे। (वह चरण कमल कैसा है ? तो कहते हैं—) जो (चरण सिंह के केसर समूह की छटा को धारण कर रहा है,' जिसमें पायल झन-झन बज रहे हैं तो लगता है जैसे भँवरों की पंक्तियाँ भनभना रही हैं; (कमल में भी केसर होते ही हैं और उनके लोभ से भँवरें चहल कदमी करते ही हैं।) (क्या करके वाचालित हो रहे हैं, तो कहते है—) देवताओं का महान् शत्रु उस महिष दैत्य की देह पर अपनी इच्छा से भेंट देकरके, (कैसी भेंट ?) स्थूल आँतों की मालावली ही जिनका अवशिष्ट भोजन है; फिर उसे पा लेने से (ठठाकर हँसने वाली (खूब खुश होने वाली) जहाँ प्रेत स्त्रियाँ हैं; (हँसने का कारण

क्या है ? तो देखिये—) देवी नें हम लोगों के लिए उच्छिष्ट अन्त्रावली अँतड़ी ही (प्रसाद स्वरूप में) छोड़ी है ॥ ४३ ॥

कोपेनेवारुणत्वं दधदधिकतरालक्ष्यलाक्षारसश्रीः
श्लिष्यच्छृङ्गाग्रकोणक्वणितमणितुलाकोटिहुङ्कारगर्भः ।
प्रत्यासन्नात्ममृत्युप्रतिभयमसुरैरीक्षितो हन्त्वरीन्वः
पादो देव्याः कृतान्तोऽपर इव महिषस्योपरिष्टान्निविष्टः ॥४४॥

महिष के ऊपर बैठा हुआ दूसरा यमराज की भाँति देवी का चरण (पैर) आपलोगों के शत्रुओं को मार दे। जो (पैर) क्रोध से ही (मानो) लाली को धारण करने वाला है इसलिए अधिकाधिक जरुरत से ज्यादा महावर (लाक्षारस) की शोभा धारण करने वाला है तथा महिष के सींग के अग्रभाग (कोने में) चिपका हुआ है अत एव वीणा वगैरह बाजाओं के मानो वह कील (खूँटी) हो एवं उससे शब्द हो रहे कड़ोरो मणि नूपुरों की आवाजें जिनके भीतर से (मानो) हुँकार भर रही हैं, फिर जिनके दिल में आसन्न मृत्यु की शंका बैठी है ऐसे दैत्यों से बार-बार जो देखा गया है। (अर्थात् यमराज भी क्रोध से लाल होकर हुँकार करता है तथा महिष (भैंसा) पर बैठा है और आसन्न मृत्यु से डरे पुरुषों—जीव मात्र के द्वारा जो बराबर देखा जाता है।) ॥ ४४ ॥

आहन्तुं नीयमाना भरविधुरभुजस्रंसमानोभयांसं
कंसेनैनांसि सा वो हरतु हरियशोरक्षणाय क्षमापि ।
प्राक्प्राणानस्य नास्यद्गगनमुदपतद्गोचरं या शिलायाः
सम्प्राप्यागामिविन्ध्याचलशिखरशिलावासयोगोद्यतेव ॥४५॥

अतिशय बोझ से व्याकुल भुजाएँ दोनों कंधों से मानो सरक करके नीचे आ रही हों ऐसे कंस के द्वारा वध के लिए लाई गई (वह नंद

सुता यद्यपि कंस को मारने में) समर्थ भी थी, फिर भी हरि (विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण) के सुयश की रक्षा के लिए ही उस कंस के प्राणों को पहले नहीं हरण किया। किन्तु शिला का स्पर्श मात्र (आश्रय लेकर के भविष्य में विन्ध्याचल के शिखर की शिला को अपने निवास के योग्य बनाने में मानों (वह) तल्लीन थी अत एव कंस के हाथों से छूट करके) आकाश में उड़ गई; ऐसी वह देवी आपलोगों के पापों को हरे, दूर करे ॥ ४५ ॥

साम्ना नाम्नाययोनेर्धृतिमकृत हरेर्नापि चक्रेण भेदा-
त्सेन्द्रस्यैरावणस्याप्युपरि कलुषितः केवलं दानवृष्ट्या।
दान्तो दण्डेन मृत्योर्न च विफलयथोक्ताभ्युपायो हतोऽरि-
र्येनोपायः स पादः सुखयतु भवतः पञ्चमश्चण्डिकायाः ॥४६॥

जिस चरण से शत्रु महिष (दैत्य) मरा वह पंचम उपाय स्वरूप देवी 'चण्डिका का चरण आपलोगों को सुख दे। जो महिष ब्रह्मा के साम (सामवेद के गान से या साम—मधुर भाषण) से—सरस शान्त विनय भाव रूप प्रथम उपाय से धैर्य धारण नहीं किया। हरि (विष्णु) के चक्र (सुदर्शन) से विदारण रूप द्वितीय उपाय से शान्त नहीं हुआ। इन्द्र भगवान् के ऐरावत हाथी के मद (जल) बरसाने रूप तृतीय उपाय से तो मात्र ऊपर से मलीन ही हुआ यानी शान्त होने के बजाय क्रोधित हुआ परन्तु सन्तुष्ट नहीं हुआ और यमराज के दण्ड रूप चतुर्थोपाय से भी न दबा। इसीलिए सभी सामादि (समझौता आदि) उपाय निष्फल साबित हुए फिर तो देवी के पाद (पैर) प्रहार ही पंचम उपाय उस महिष के वध के लिए कारगर उपाय सिद्ध हुआ ॥ ४६ ॥

भर्ता कर्ता त्रिलोक्यास्त्रिपुरवधकृती पश्यति त्र्यक्ष एष
क स्त्री कायोधनेच्छा न तु सदृशमिदं प्रस्तुतं किं मयेति।

मत्वा सव्याजसव्येतरचरणचलाङ्गुष्ठकोणाभिमृष्टं
सद्यो या लज्जितेवासुरपतिमवधीत्पार्वती पातु सा वः ॥४७॥

छल पूर्वक अपने बाँयें पैर के चंचल अंगूठे के कोर से छू करके उस असुर-पति (महिषासुर) का जिसने वध कर दिया वह पार्वती आपलोगों की रक्षा करें। जो (देवी) यह मान करके मन में लज्जित थी कि तीनों लोक के कर्ता, त्रिपुर (नगर या राक्षस) के वध का सुयश जिसे मिला है, जो त्रिलोचन हैं तथा मेरे पतिदेव हैं सो शिव (यह सब मेरा कार्य) देख रहे हैं। कहाँ स्त्री जाति ? कहाँ उसमें ऐसी बहादुरी से लड़ने की इच्छा ? यह सब अनुचित एवं अव्यवहारिक है यानी स्त्रीजन के लिए सर्वथा अनुचित है। (अतः) मैंने यह सब क्या कर दिया ? क्योंकि नारी का कार्य-क्षेत्र घर-आंगन है, लड़ाई का मैदान नहीं ॥ ४७ ॥

वृद्धोक्षो न क्षमस्ते भवतु भव भवद्वाह एषोऽधुनेति
क्षिप्तः पादेन देवं प्रति झटिति यया केलिकान्तं विहस्य।
दन्तज्योत्स्नावितानैरतनुभिरतनुर्न्यकृतार्धेन्दुभाभि-
र्गौरो गौरेव जातः क्षणमिव महिषः सावतादम्बिका वः ॥४८॥

हे शिव, आप का बूढा बैल बोझ ढोने लायक नहीं है, (अतः) आज से यह महिष (भैंसा) आपका बोझ ढोवे (वाहन बने); इस प्रकार अपने क्रीड़ा-पति (शिव) से मजाक करके तथा हँस करके शिव की ओर (पास में) झट से जिसने उस महिष को अपने पैर से (मारकर) फेंक दिया, वह अम्बिका आप सब की रक्षा करें। (महिष कैसा है ? इसे देखिये—) जो शरीर से रहित है, शिव के माथे पर स्थित बालेन्दु (बाल चन्द्र की ज्योति) तिरस्कृत है, दाँतों की ज्योति वितान (चमक-दमक) से सफेद लग रहा है अतः क्षणभर के लिए वह (महिष भैंसा) मानो बैल हो गया है ॥ ४८ ॥

प्राक्कामं दहता कृतः परिभवो येन त्रिसंध्यानतैः
सेर्ष्या वोऽवतु चण्डिका चरणयोः स्वं पातयन्ती पतिम् ।
कुर्वत्याभ्यधिकं कृते प्रतिकृतं मुक्तेन मौलौ मुहु-
र्बाष्पेणाहितकज्जलेन लिखितं स्वं नाम चन्द्रे यया ॥४९॥

त्रिकाल संध्या (तीनों काल की सन्ध्या) में नमन करने से अपने पति (शिव) को अपने चरणों में झुकाती हुई चण्डिका आप लोगों की रक्षा करें। जो देवी (शिव पर ईर्ष्यालु (रंज) हो गई हैं इसलिए कि (सती दहन के बाद समाधि अवस्था में) शिव ने कामदेव को जलाकर (नारी को) तिरस्कृत किया था, अत एव बदले की भावना से चण्डिका ने काजल के द्वारा बार-बार मुकुट में और गिरते आँसुओं से अपना नाम चन्द्रमा में लिख दिया था। (चूँकि चन्द्रमा में कालापन है परन्तु वह कालापन नहीं काले अक्षरों में लिखा पार्वती का नाम है।) अभिप्राय यह कि शिव ने गौरी के सामने ही काम को जलाया और गौरी ने (शिव में) काम को उत्पन्न कर (जगा कर) शिव को अपने पैरों पर गिराया (झुकाया) इस प्रकार (देवी ने) शिव से अधिक अपना बदला लिया ॥ ४६ ॥

तुङ्गां भृङ्गाग्रभूमिं श्रितवति मरुतां प्रेतकाये निकाये
कुञ्जौत्सुक्याद्विशत्सु श्रुतिकुहरपुटं द्राक्ककुप्कुञ्जरेषु ।
स्मित्वा वः संहृतासोदर्शनरुचिकृताकाण्डकैलासभासः
पायात्पृष्ठाधिरूढे स्मरमुषि महिषस्योच्चहासेव देवी ॥५०॥

(देवी ने) मुसकरा करके जिसके प्राणों को हर लिया (ऐसा वह महिष) अपने दांतों की चमक-दमक से असमय में ही (युद्ध भूमि में ही) कैलाश पर्वत का भास (दृश्य) खड़ाकर दिया था उस महिष के मृतक देह पर (खड़ा होकर) देवताओं के समूह में (फिर उस

महिष की) ऊँची सींग के अगले छोर पर स्थिर होकर; फिर दिशा रूपी हाथियों को कुञ्जलताओं की झाड़ी मान कर बड़ी उत्सुकता से उसके कर्ण कुहर पुटों में एकाएक प्रवेश करके; फिर काम को नष्ट करने वाले शिव के पीठ पर चढ़कर (खड़ा होकर) जोर-जोर से हँसने वाली देवी आप लोगों की रक्षा करें ॥ ५० ॥

कृत्वा पातालपङ्के क्षयरयमिलितैकार्णवेच्छावगाहं
दाहान्नेत्रत्रयाग्नेर्विलयनविगलच्छृङ्गशून्योत्तमाङ्गः ।
क्रीडाक्रोडाभिशङ्कां त्रिदधदपिहितव्योमसीमा महिम्ना
वीक्ष्य क्षुण्णो ययाऽरिस्तृणमिव महिषः सावतादम्बिका वः ॥५१॥

जिस (देवी) ने महिष को जिसमें प्रलयकारी वेग (तूफान) भरा था और एकार्णव समुद्र में डूबकी लगाना चाहता था तो उसे पातालपुरी[1] के पाँक में धँसा करके अपनी नजरों से उसे भरपूर देख घास (तृण) की तरह मसल दिया था, वह अम्बिका आप लोगो की रक्षा करें। जिसके तीनों नयनों की अग्नि की लपट में महिष के दोनों सींग लाख की तरह जल गए हैं, भस्म हो गए हैं, अतः उसका सिर भाग सूना लग रहा है (बिना सींग का सिर दिखाई पड़ रहा है), जो अपनी महिमा से आकाश की सीमा को ढँक लिया है इसीलिए वह (महिष) वराह की लीला एवं भ्रांति को पैदा कर दिया है (ऐसा वह महिषासुर दैत्य है) ॥ ५१ ॥

शूले शैलाविकम्पं न निमिषितमिषौ पट्टिशे साट्टहासं
प्रासे सोत्प्रासमव्याकुलमपि कुलिशे जातशङ्कं न शङ्कौ ।

---

१. जैसे आदि वराह भगवान् ने प्रलयकारी समुद्र में अवगाहन किया था उसी प्रकार इस महिष ने पातालपुरी के पंक में अवगाहन किया है ।

चक्रेऽवक्रं कृपाणे न कृपणमसुरारातिभिः पात्यमाने
दैत्यं पादेन देवी महिपितवपुषं पिंषती वः पुनातु ॥५२॥

भैंसे के शरीरवाले उस दैत्य (महिषासुर) को पैर से पीसती हुई देवी आप लोगों की रक्षा करें। (कैसा है महिषासुर ? इसे देखिये—) जो असुरों के शत्रु देवताओं द्वारा शूल से मारे जाने पर भी शैल (पर्वत) की तरह अचल है। बाण छोड़े जाने पर भी जो टकटकी बाँधे है (यानी आँखो की पलकें नहीं गिरती हैं); पट्टिश नामक अस्त्र छोड़े जाने पर भी जो ऊँचे स्वर में हँसता है (डँकारता है); भालों (कुन्तों) की मार पर जो थोड़ा सा मुस्का देता है; वज्र की चोट पर भी जो व्याकुल नहीं है, शङ्कु नामक हथियार लगने पर भी निशङ्क है, चक्र चलाये जाने पर भी जो सहज भाव से स्थिर है, कृपाण (तलवार) के वार पर भी जो कृपण (दीन) नहीं है। (इस प्रकार देवताओं द्वारा विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करने पर भी जिस (महिष) का बाल बाँका नहीं हो रहा है, ऐसा वह महिष है॥ ५२॥

चक्रे चक्रस्य नास्त्र्या न च खलु परशोर्न क्षुरप्रस्य नासे-
र्यद्वक्रं कैतवाविष्कृतमहिषतनौ विद्विषत्याजिभाजि।
प्रोतात्प्रासेन मूर्ध्नः सघृणमभिमुखायातया कालरात्र्या
कल्याणान्याननाब्जं सृजतु तदसृजो धारया वक्रितं वः ॥५३॥

(देवी के साथ में) कपटी महिष शत्रु के युद्ध करने पर उस दैत्य के द्वारा फेंके गये चक्र की तेज धार से (देवी का मुख कमल) टेढ़ा नहीं हुआ, न फरशे की धार से बंद हुआ, न बाण से बाँका हुआ, न तलवार के वार से ही विकृत हुआ किन्तु (देवी के द्वारा) भाला फेंकने से उस महिष के उन्नत मस्तक से जो खून की धाराएँ बह चलीं उनसे देवी का मुख कमल घिना करके विपरीत दिशा में घूम गया, ऐसा टेढ़ा बना कालरात्रि भगवती का वह मुखकमल आपलोगों का कल्याण

करे। (अभिप्राय कि युद्ध में नाना प्रकार के हथियारों की चोट खाकर भी भगवती का मुख बंद नहीं हुआ किन्तु सामने से आती महिष-मस्तक से निकली खून की बदबू भरी धारा से घिनाकर वह मुखकमल मुँद गया (सिकुड़ गया यानी देवी ने दुर्गन्ध से अपना मुँह घुमा लिया)॥ ५३॥

हस्तादुत्पत्य यान्त्या गगनमगणिताधैर्यवीर्यावलेपं
वैलक्ष्येणेव पाण्डुद्युतिमदितिसुतारातिमापादयन्त्याः।
दर्पानल्पाट्टहासद्विगुणतरसिताः सप्तलोकीजनन्या-
स्तर्जन्या जन्यदूतो नखरुचिततयस्तर्जयन्त्या जयन्ति॥५४॥

दैत्यों को धमकाती हुई (किंवा फटकारती हुई) सातो लोक की माता जगदम्बा की तर्जनी (अंगूठे के पास की अंगुली) की नख ज्योतियाँ जयशाली हों। (नख ज्योतियाँ कैसी हैं, तो कहते हैं—) जो संग्राम की दूती हैं, अभिमान के कारण अधिक ऊँचे स्वर से हँसने से जिसमें अधिक सफेदी (चमक) आ गई है। (देवी कैसी है ?—) जो कंस के हाथों से छूटकर (उड़कर) आकाश में चली गई हैं तथा जो (कंस) अपने कायरपन से देवी के पराक्रम को तुच्छ मान लिया है ऐसे देव शत्रु उस कंस को जो (देवी) बड़ी विलक्षणता से पीले रंग में रंग रही है (यानी अपने प्रभाव से कंस को जो अभिभूत कर रही है उस जग-जननी की नख ज्योति जयशालिनी होवे।)॥ ५४॥

प्रालेयाचलपल्वलैकबिसिनी सार्यास्तु वः श्रेयसे
यस्याः पादसरोजसीम्नि महिषक्षोभात्क्षणं विद्रुताः।
निष्पिष्टे पतितास्त्रिविष्टपरिपौ गीत्युत्सवोल्लासिनो
लोकाः सप्त सपक्षपातमरुतो भान्ति स्म भृङ्गा इव॥५५॥

हिमालय रूपी सरोवर में एका (प्रमुखा) पद्मिनी जैसी आर्या गौरी आपलोगों के मंगल के लिए होवे। जिनके चरण कमल पर

सातो लोक (के प्राणी) भँवरों की भाँति सुशोभित थे। जो (सप्त लोक, अन्यत्र–भौंरा) महिष के क्षोभ (लोट-पोट करने) से क्षण भर के लिए भाग गया था (अस्त व्यस्त था) अब महिष के वध हो जाने पर आ धमके हैं (आपस में मिले हैं); जो गीति-स्तुति गान (अन्यत्र–गुंजार) रूप उत्सव से उल्लसित (परमानन्दित) हैं, और जिनके पथ में एक मात्र देवगण हैं। (कमल पर रहने वाले भौंरे भी भैंसों आदि के हरकत से-हिलाने-डुलाने या परेशान करने से कुछ देर तक के लिए वहाँ से उड़ जाते हैं फिर क्षोभ-हलन-चलन शान्त होने पर पुनः कमल पत्र पर आ बैठते हैं, गुंजार करने लगते हैं, पंखों से वायु पैदा करते हैं अतः ये देवता की तरह हैं।) ॥ ५५ ॥

आप्राप्येषुरुदासितासिरशनेराराात्कृतः शङ्कुत-
श्चक्रव्युत्क्रमकृत्परोक्षपरशुः शूलेन शून्यो यया।
मृत्युर्दैत्यपतेः कृतः सुसदृशः पादाङ्गुलीपर्वतः
पार्वत्या प्रतिपाल्यतां त्रिभुवनं निःशल्यकल्यं तया ॥५६॥

बाण उसे नहीं पा सका (छू सका), वहाँ तलवार भी कुछ नहीं कर पाया, वज्र प्रहार से भी वह दूर रहा (अछूता रहा); फिर शंकु को कौन पूछे ? (यानी वह वज्र से भी असाध्य था तो शङ्कु नामक हथियार की क्या बात है ?), चक्र की भी चाल वहाँ नहीं चली फिर परशु (फरसा-कुठार) तो वहाँ किसी को दिखा ही नहीं और त्रिशूल से भी सूना (वंचित) रहा। (अभिप्राय यह कि उक्त हथियारों की कोई उपयोगिता सिद्ध नहीं हुई।) ऐसी दशा में भगवती पार्वती ने पर्वत समान अपने पैर की अंगुली से उस दैत्यपति (महिष) को मार दिया। उस पार्वती के द्वारा यह त्रिभुवन परिपालित होवे, जो (त्रिभुवन) महिषरूपी काँटे के निकलने से स्वस्थ है (शान्त) है ॥५६॥

नष्टानष्टौ गजेन्द्रानवत न वसवः किं दिशो द्राग्गृहीताः
शार्ङ्गिन्सङ्ग्रामयुक्त्या लघुरसि गमितः साधु तार्क्ष्येण तैक्ष्ण्यम्।

उत्खाता नेत्रपङ्क्तिर्न तव समरतः पश्य नश्यद्बलं स्वं
स्त्वर्नाथेत्यात्तदर्पं व्यसुमसुरममुमा कुर्वती त्रायतां वः ॥५७॥

हे वसुओ ! पलायित (नष्ट) होने वाले दिग्गजों—दिशारूपी हाथियों को न बचा सके, क्या तुम लोग भी दिशाएँ पकड़ लिए ? (भाग चले !) हे विष्णु, (यद्यपि तुम्हारा वाहन) गरुण शीघ्रगामी है परन्तु यह सोलहो आने सही है कि संग्राम की दृष्टि से तुम तुच्छ हो; हे इन्द्र ! तुम्हारी आँखों को किसी ने निकाल (फोड़ा) नहीं है अतः तुम युद्ध से विनष्ट हो रहे अपने बल (या सेनाओं) को देखो; इस प्रकार से गर्व करने वाले महिष (दैत्य) को निर्जीव (मुर्दा) बनाती हुई वह उमा आपलोगों की रक्षा करें ॥ ५७ ॥

श्रुत्वा शत्रुं दुहित्रा निहतमतिजडोऽप्यागतोऽह्नाय हर्षा-
दाश्लिष्यन्छैलकल्पं महिषमवनिभृद्बान्धवो विन्ध्यबुद्ध्या ।
यस्याः श्वेतीकृतेऽस्मिन्स्मितदशनरुचा तुल्यरूपो हिमाद्रि-
र्द्राग्द्राघीयानिवासीदवतमसनिरासाय सा स्तादुमा वः ॥५८॥

वह उमा आप लोगों के अज्ञान रूपी अन्धकारों को दूर करें; जिस (देवी उमा) की मुस्कान में दाँतों की चमक से महिष (दैत्य) की चमक-दमक हिमालय के समान बढ़ी हुई (धवल पर्वत-सा) लगती थी। जब उसने (हिमालय ने) सुना कि बेटी पार्वती ने महिष (शत्रु) को मार दिया तो अत्यन्त जड़ होकर (पत्थर) भी खुशी में (हर्षातिरेक में) वहाँ आया और विन्ध्याचल समझ कर काले पहाड़ की भाँति जमीन पर पड़े हुए महिष को ही गले में लगा लिया (आलिङ्गन किया) इसलिए कि जितने पर्वत हैं, वे सभी उसके (हिमालय के) सगे भाई ही तो हैं ॥ ५८ ॥

क्षिप्तोऽयं मन्दराद्रिः पुनरपि भवता वेष्टयतां वासुकेऽब्धौ
प्रीयस्वानेन किं ते बिसतनुतनुभिर्भक्षितैस्ताक्ष्र्य नागैः ।

अष्टाभिर्दिग्गजेन्द्रैः सह न हरिकरी कर्षतीमं हते वो
ह्रीमत्या हैमवत्यास्त्रिदशरिपुपतौ पान्त्विति व्याहृतानि ॥५९॥

महिषासुर के मरने पर लज्जित पार्वती के द्वारा इस प्रकार से कही गई वचनावलियाँ आप लोगों की रक्षा करें। (कैसी वचनावलियाँ ? कहते हैं—) हे वासुकि, मन्दराचल की तरह महिष (दैत्य) को समुद्र में फेंक दिया, अब आप इसे पुनः बाँधो। हे गरुड, इस महिष से ही तूँ तृप्त हो जा (क्योंकि) कमलनाल की तरह कोमल (अति पतले) नागों से (तुम्हारा) क्या होगा ? इस महिष को आठो दिग्गजों सहित इन्द्र का हाथी ऐरावत भी नहीं खींच पा रहा है ॥ ५९ ॥

विशेषः—समुद्र मन्थन के समय वासुकि नाग मन्दराचल को बाँधने के लिए रस्सी बने थे। इस प्रकार मुँह के भाग में दैत्यगण रहे और पूँछ भाग को देवता पकड़े हुए समुन्द्र मन्थन किए थे। गरुड का भोजन नाग (सर्प) है परन्तु इससे पूरी तृप्ति नहीं होती है। अतः महिष अब पूरा भोजन बनेगा।

एष प्लोष्टा पुराणां त्रयमसुहृदुरःपाटनोऽयं नृसिंहो
हन्ता त्वाष्ट्रं वृत्राष्ट्राधिप इति विविधान्युत्सवेच्छाहृतानाम्।
विद्राणानां विमर्दे दितितनयमये नाकलोकेश्वराणा-
मश्रद्धेयानि कर्माण्यवतु विदधती पार्वती वो हतारिः ॥६०॥

दैत्यों के युद्ध में भागने वाले, परन्तु महिषासुर के वध के बाद खुशी मनाने की इच्छा से पुनः इकट्ठे होने वाले इन्द्रादि देवताओं के निमित्त असंभावनीय विविध कार्यों को सम्पन्न करने वाली पार्वती आप लोगों की रक्षा करें। (महिष युद्ध में कौन-कौन देवता भागे थे ? गिनाते हैं—) यह शंकर त्रिपुर को जलाने वाले हैं, परन्तु महिषासुर के संग्राम में भाग गए थे, इसी प्रकार नरसिंह देव भी शत्रुओं के नगर

को पाटने वाले हैं (जनपदध्वंस करने वाले हैं) फिर भी महिष के आगे पलायमान हुए थे, इन्द्र वृत्रासुर को मारने वाले हैं तथापि महिष के आगे (लड़ाई में) न टिक सके। इस प्रकार देवताओं द्वारा सर्वथा अकरणीय कार्यों को देवी पार्वती ने किया (यानी महिष वध जैसा दुर्गम कार्य किया है) अतः अघटित घटना पटियसी वह देवी आप सबकी रक्षा करें ॥ ६० ॥

शत्रौ शातत्रिशूलक्षतवपुषि रुषा प्रेषिते प्रेतकाष्ठां
काली कीलालकुल्यात्रयमधिकरयं वीक्ष्य विश्वासितद्यौः।
त्रिस्रोतास्त्र्यम्बकेयं वहति तव भृशं पश्य रक्ता विशेषा-
न्नो मूर्ध्ना धार्यते किं हसितपतिरिति प्रीयते कल्पतां वः ॥६१॥

अपने तीखे त्रिशूल से शत्रु (महिष) को क्षत-विक्षत करके रोष में आकर उसे यमपुरी भेज दिया, बाद में उस दैत्य के मृत देह से अधिक वेग के साथ निकले खून की तीन धाराओं को देखकर अपने पति (शिव) का उपहास करने वाली भगवती काली आपलोगों की प्रीति बढ़ावें। (कैसा यह उपहास है ?—) हे अम्बक ! (त्रिलोचन !) यह आपका सुपरिचित आकाश मण्डल लाल होकर गंगा (त्रिस्रोता-त्रिपथगा) को धारण कर रहा है। इसे आप देखो। क्या महाराज, इसे ही अपने सिर से धारण करते हो ? यानी ऐसी रक्तमयी गंगा आप के माथे पर सवार है ! (हाय रे देवता !) ॥ ६१ ॥

शृङ्गे पश्योर्ध्वदृष्ट्याधिकतरमतनुः सन्न पुष्पायुधोऽस्मि
व्यालासङ्गेऽपि नित्यं न भवति भवतो भीर्नयज्ञोऽस्मि येन।
त्वं मुञ्चोच्चैः पिनाकिन्पुनरपि विशिखं दानवानां पुरोऽहं
पायात्सोत्प्रासमेवं हसितहरमुमा मृद्नती दानवं वः ॥६२॥

हे पिनाकी ! अपनी तीसरी आँख से मेरी दोनों सींगों को भलीभाँति देखो, फिर भी मैं देह रहित होकर कामदेव जैसा

नहीं हूँ, कामदेव को तो तुमने अपने तीसरे नयन से जला दिया था परन्तु मैं तुम्हारे तीसरे नेत्र से भस्म न हो सका। तुम्हारा व्याल (सर्प तथा बाण) से अधिक लगाव है फिर भी (मुझे) भय नहीं हो रहा, क्योंकि मैं यज्ञपुरुष नहीं हूँ यानी तुम्हारे बाण के भय से यज्ञ (पुरुष) भाग गया था वैसा मैं नहीं हो रहा हूँ; तुम्हारे पास तो सर्प भी है फिर मुझे भय नहीं सता रहा, क्यों कि मैं यज्ञपुरुष नहीं हूँ। अतः तुम्हारे साँप के डँसने का मुझे भय नहीं है, चूँकि मैं सर्प विष मोचन शास्त्र को भलीभाँति जानता हूँ। मैं दैत्यों का त्रिपुर हूँ तुम ऊँचे हाथों से अपने बाणों को मेरे ऊपर फेंको ! अर्थात् मैं दानवों के आगे हूँ, उनका सरगना हूँ, अतः तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते। इस प्रकार जरा हँस करके शिव का उपहास करने वाले दानव महिष को मिट्टी में मिलाने वाली उमा (पार्वती) आप लोगो की रक्षा करें ॥ ६२ ॥

विशेष—दक्ष यज्ञ विध्वंस की कहानी पुराणों में विश्रुत है। उसमें शिव के भय से यज्ञ का पलायन हो गया था। बाद में शंकर के अनुकुल होने पर यज्ञ की प्राणप्रतिष्ठा हुई और यज्ञादिकार्य पुनः लोक में होने लगे।

नन्दीशोत्सार्यमाणापस्तुतिसमनमन्नाकिलोकं नुवत्या
नप्तुर्हस्तेन हस्तं तदनुगतगतेः षण्मुखस्यावलम्ब्य।
जामातुर्मातृमध्योपगमपरिहृते दर्शने शर्म दिश्या-
न्नेदीयच्चुम्ब्यमाना महिषवधमहे मेनया मूर्ध्न्युमा वः ॥६३॥

महिष वध की खुशी में नन्दीश्वर द्वारा मार्ग से दूर हटाए गए देवलोक को स्तुति करने वाली मेना (पार्वती की माता एवं हिमालय की पत्नी) द्वारा माथे पर चूमी जाती हुई (वह) उमा आप लोगों को आनन्द दें। (मेना ने किस प्रकार माथा चूमा ? तो कहते हैं—) मेना ने देव-समाज के पीछे-पीछे जाने वाले अपने नाती—षण्मुख के हाथ को

अपने हाथ से पकड़ करके सप्त मातृकाओं के बीच घिरे हुए जामाता—शिव के दिखाई न देने पर भी उनके पास में ही अपनी पुत्री गौरी का माथा चुम्बन किया ॥ ६३ ॥

विशेषः—महिष वध का उत्सव है, सप्त मातृकाएँ आई हैं, इनके आने से देवताओं को थोड़ा दूर हटना पड़ रहा है, इन्हीं के साथ षण्मुख भी हट रहे थे परन्तु नाती हैं इसलिए मेना उनका हाथ पकड़ लेती हैं तथा देव-समूह के प्रति समान प्रकट करती हैं और अपनी पुत्री उमा को बड़े प्यार से माथा चूमती हैं। इस कार्य में उन्हें अपने दामाद नहीं दिखाई पड़े क्योंकि वे भी माहेश्वरी[1] रूप मातृकाओं में थे और उमा के बिल्कुल पास ही थे।

भक्त्याभृग्वत्रिमुख्यैर्मुनिभिरभिनुता बिभ्रती नैव गर्वं
शर्वाणी शर्मणे वः प्रशमितसकलोपप्लवा सा सदास्तु।
या पार्ष्णिक्षुण्णशत्रुर्विगलितकुलिशप्रासपाशत्रिशूलं
नाकौकोलोकमेव स्वमपि भुजवनं संयुगेऽवस्त्वमंस्त ॥६४॥

भक्ति पूर्वक भृगु, अत्रि प्रमुख मुनियों से पूजित (प्रशंसित) होकर भी जो (देवी) गर्व नहीं करती तथा सम्पूर्ण आपदाओं (संकटों) को जो शान्त करने वाली है वह शिवपत्नी (शर्वाणी) पार्वती आप लोगों के सुख के लिए सदैव तत्पर रहे, जिसने (पार्वती ने) अपने एड़ी के प्रहार से शत्रु को कुचल (पीस) दिया है और समस्त देवलोक को भी अपने भुजवन में नगण्य वस्तु ही माना, क्योंकि संग्राम (युद्ध) में जिनके (इन्द्रादि देवताओं के) वज्र, बर्छी (भाला), फंदा (पाश) तथा त्रिशूल (शिवका) मंद पड़ गया था (यानी देवताओं के हाथों से भय के कारण ये हथियार नीचे गिर पड़े थे और भवानी की भुजाओं से प्रहार के लिए कुलिश = वज्र आदि हथियार गिरे थे) ॥ ६४ ॥

---

१. ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः ॥ (अमरकोश)

चक्रं शौरेः प्रतीपं प्रतिहतमगमत्प्राग्युधाम्नां तु पश्चा-
दापच्चापं बलारेर्न परमगुणतां पूरुयप्लोषिणोऽपि।
शक्त्यालं मां विजेतुं न जगदपि शिशौ षण्मुखे का कथेति
न्यक्कुर्वन्नाकिलोकं रिपुरवधि यया सावतात्पार्वती वः ॥६५॥

इस प्रकार देवलोक (स्वर्गलोक के देवों) को तिरस्कार करनेवाले शत्रु महिष को जिसने (देवी दुर्गाने) मारा वह पार्वती आप सब को बचावें, रक्षा करें। (ऐसी स्थिति क्यों आई? कहते हैं—) विष्णु का सुदर्शन चक्र मार करके भी पहली बार असफल हुआ, बाद में देवताओं का सैन्य (असफल हुआ), इन्द्र के धनुष पर तो डोरी ही नहीं चढ़ी और शिव की भी (यही दशा हुई यानी पिनाक-धनुष पर डोरी नहीं चढ़ी) सामर्थ्य (शक्ति) से मुझे जीतने के लिए जगत भी समर्थ नहीं है, फिर तो बालक षण्मुख (कार्तिकेय) की का कथा, क्या चर्चा, यानी षण्मुख अपनी शक्ति रूपी हथियार से मुझे जीतेगा, यह दूर की बात है ॥६५॥

विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥६६॥

रुद्र समूह के पलायित होने पर, सूर्य के कम्पित (तरल) होने पर, इन्द्रदेव के वज्र ध्वस्त होने पर, चन्द्रमा के शंकित (भयभीत) होने पर, वायु के विराम ले लेने पर; कुबेर के वैर भाव छोड़ देने पर (लड़ाई से मुँह मोड़ लेने पर), वैकुण्ठवासी विष्णु के अस्त्र कुण्ठित हो जाने पर अति क्रोधी अपने बल पौरुष पर घमण्ड करने वाले महिष दैत्य को निर्विघ्न (बिना किसी बाधाके) मार डालने वाली एवं प्रभूत शक्तिवाली (वह) भवानी (शिव पत्नी-पार्वती) आप लोगों के पाप-भय को शान्त करें ॥ ६६ ॥

भूषां भूयस्तवाद्य द्विगुणतरमहं दातुमेवैष लग्नो
भग्ने दैत्येन दर्पान्महिषितवपुषा किं विषाणे विषण्णः।
इत्युक्त्वा पातु मातुर्महिषवधमहे कुञ्जरेन्द्राननस्य
न्यस्यन्नास्ये गुहो वः स्मितसितरुचिनी द्वेषिणो द्वे विषाणे ॥६७॥

माता पार्वती से महिष वध के उत्सव पर इस प्रकार कह करके महिषासुर की दोनों सींगों को (लेकर) इन्द्र के ऐरावत हाथी की भाँति मुखवाले गणपति जी के मुख में स्थापित करते हुए कार्तिकेय (गुह) आप लोगों की रक्षा करें, (दोनों सींग कैसे हैं, इसे कहते हैं—) जो मुस्कान से धवल कांति वाले हैं; (ऐसी स्थिति क्यों हुई, इसे कहते हैं—) हे गजानन ! महिष दैत्य के द्वारा तुम्हारे दाँत तोड़ दिए गए तो तुम क्यों खिन्न हो, मैं यह दुगुना (चमक दमक वाला शक्ति सम्पन्न जैसे हो वैसे) फिर से बनाकर तुम्हें आज सजाने में ही लगा हूँ ॥६७॥

विश्राम्यन्ति श्रमार्ता इव तपनभृतः सप्तयः सप्त यस्मि-
न्सुप्ताः सप्तापि लोकाः स्थितिमुषि महिषे यासिनीधाम्नि यत्र।
धाराणां रौधिरीणामरुणिमनि नभःसान्द्रसंध्यां दधान-
स्तस्य ध्वंसात्सुताद्रेरपरदिनपतिः पातु वः पादपातैः ॥६८॥

द्वितीय सूर्य की नाईं भगवती पार्वती आप लोगों की रक्षा करें। (सूर्य कैसे हैं ?) रात्रि के समान वर्णवाले (यानी काले रंग वाले) तथा लोक व्यवहार को नाश करने वाले महिष (दैत्य) के (देह पर) परिश्रम से मानो थक करके ही सूर्य के सातों घोड़े विश्राम लेते हैं [अन्यत्र जहाँ सातो लोग सोये हुए से हैं]। उस महिष के चरणों के प्रहार से रुधिर की धारा से जो लाली उभरी वही घनी संध्या के रूप में आकाश में व्याप्त है जिसे वे (सूर्य) धारण किए हुए हैं। भगवान दिनपति (सूर्य) भी समस्त लोक के कार्य व्यापार को हरण करने

वाली (विश्रामकारिणी) रात्रि को अपने हजारों किरणों से नाश करता है और रक्तवर्ण संध्या को धारण करता है ॥ ६८ ॥

देवारेर्दानवारेर्द्रुतमिह महिषच्छद्मनः पद्मसद्मा
विद्रातीत्यत्र चित्रं तव किमिति भवन्नाभिजातो यतः सः ।
नाभीतोऽभूत्स्वयंभूरिव समरभुवि त्वं तु यद्विस्मितास्मी-
त्युक्त्वा तद्विस्मितं वः स्मररिपुमहिषीविक्रमेऽव्याज्जयायाः ६९

भैंसे के रूप का बहाना करने वाले देवताओं के शत्रु (महिषासुर) से ब्रह्मा शीघ्र भागता है तो इसमें कौन-सा आश्चर्य है क्योंकि वह (ब्रह्मा) विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ है। अतः वह कुलीन नहीं है (कुलीन का भागना अनुचित है)। हे शिव ! जिस समर भूमि (महिषासुर-संग्राम) में तुम भी ब्रह्मा (स्वयंभू) की तरह निर्भय नहीं हुए (यानी डर गए) इस प्रकार कामदेव के शत्रु शिव की पटरानी भगवती पार्वती के बल-पराक्रम के विषय में जया के ऐसा कहने पर जो विस्मय हुआ वह आप सबकी रक्षा करे ॥ ६९ ॥

निस्त्रिंशेनोचितं ते विशसनमुरसश्चण्डि कर्मास्य घोरं
व्रीडामस्योपरि त्वं कुरु दृढहृदये मुञ्च शस्त्राण्यमूनि ।
इत्थं दैत्यैः सदैन्यं समदमपि सुरैस्तुल्यमेवोच्यमाना
रुद्राणी दारुणं वो द्रवयतु दुरितं दानवं दारयन्ती ॥७०॥

इस प्रकार से दीनतापूर्वक दैत्यों द्वारा और अभिमान पूर्वक तथा हर्ष के साथ देवताओं द्वारा समान रूप से कही जाने वाली, महिष दानव को विदीर्ण करने वाली रुद्रपत्नी आप लोगों के दारुण (भयंकर) पाप को बहादे (पिघलादे)। (इस प्रकार कैसे ? कहते हैं—) हे निर्दये ! महिष (पशुरूप भैंसे या दैत्य) की छाती को फाड़कर वध करना तेरा उचित नहीं है, हे चण्डी, इस पापपूर्ण कार्य पर तूँ (स्वयं) शर्म कर, (चूँकि पशुवध से लज्जा होती है अतः) हे दृढहृदये, (अपराध

को सहने में दृढ़ हृदयवाली !) इन हथियारों को दूर फेंको;—इस प्रकार दैत्यों से कही जानेवाली; तथा देवों के द्वारा—हे चण्डी, इस तलवार से महिष दैत्य के वक्षस्थल को काटकर मारना तुम्हारा उचित है, क्योंकि यह कार्य घोर है (असह्य) है; इस दैत्य पर तूं स्वयं लज्जा करो यानी यदि महिषासुर का वध तूं नहीं करती तो (देवसमाज में) तुम्हारी लज्जा होती; हे कठिन हृदये, इन हथियारों को इस दैत्य पर छोड़ो, यानी अपने सम्पूर्ण हथियारों के द्वारा इस पापी पर एकबारगी प्रहार कर दो—(इसप्रकार दैत्य एवं देवताओं द्वारा कही जाने वाली रुद्राणी-शिवपत्नी आप लोगों के असह्य पाप को (अन्यत्र) कहीं बहा दे, जला दे या पिघला दे ॥ ७० ॥

चक्षुर्दिक्षु क्षिपन्त्याश्चलितकमलिनीचारुकोषाभिताम्रं
मन्द्रंध्वानानुयातं झटिति वलयिनो मुक्तबाणस्य पाणेः ।
चण्ड्याः सव्यापसव्यं सुररिपुषु शरान्प्रेरयन्त्या जयन्ति
त्रुट्यन्तः पीनभागे स्तनवलनभरात्संधयः कञ्चुकस्य ॥७१॥

चंचल कमलिनी के मनोहर कोष की तरह जो अत्यन्त लाल वर्ण का है और शीघ्र झुकाये हुए धनुष पर बाणों को छोड़ने वाले हाथ के गंभीर घोष के साथ पीछे की ओर मोड़ने वाले नेत्रों को चारो दिशाओं में दौड़ाने वाली तथा दोनों हाथों से देव-शत्रुओं पर बाणों को छोड़ने वाली चण्डी के बलखाते (हिलने-डुलने वाले) दोनों स्तनों के भार से (दबाव से) स्थूल भाग में टूट रही चोली (अचकन-ब्लाउज) की संधियाँ (जोड़ें-सीवन) जयशील हों ॥७१॥

बाहूत्क्षेपसमुल्लसत्कुचतटं प्रान्तस्फुटत्कञ्चुकं
गम्भीरोदरनाभिमण्डलगलत्काञ्चीधृतार्धांशुकम् ।
पार्वत्या महिषासुरव्यतिकरे व्यायामरम्यं वपुः
पर्यस्तावधिबन्धबन्धुरलसत्केशोच्चयं पातु वः ॥७२॥

महिषासुर के विनाश में बाहुओं के उछालने से जिनके स्तन तट उल्लसित हो रहे हैं, जिनकी चोली (अचकन) का किनारा दरक (फट) रहा है, अथाह (गहरे) उदरनाभी मंडल में डूब गयी है करधनी (तागड़ी) और दुपट्टा जिनके, व्यायाम (कसरत-शारीरिकश्रम) से जो मनोरम लग रहा है, जिसने समय पर (जूड़ा) बाँधना छोड़ दिया है, केश-राशि पर मुकुट शोभ रहा है ऐसी पार्वती का शरीर आप लोगों की रक्षा करे ॥ ७२ ॥

चक्रं चक्रायुधस्य क्वणति निपतितं रोमणि ग्रावणीव
स्थाणोर्बाणश्च लेभे प्रतिहतिमुरुणा चर्मणा वर्मणेव ।
यस्येति क्रोधगर्भं हसितहरिहरा तस्य गीर्वाणशत्रोः
पायात्पादेन मृत्युं महिषतनुभृतः कुर्वती पार्वती वः ॥७३॥

पत्थर की तरह (कठोर) महिषासुर के रोम (बालों) पर गिरकर विष्णु का चक्र (टन ऐसा) शब्द करता है, यानी विष्णु का चक्र उसका बाल भी बाँका (काट) न कर सका, शिव का बाण उसके (महिष दैत्य के) चर्ममय कवच पर टकरा जाता है यानी शंकर का बाण उसका चमड़ा भी नहीं काट सका। लेकिन उस देवशत्रु महिषासुर दैत्य को, जिसके भीतर क्रोध भरा है और विष्णु तथा शिव का उपहास करता रहा है; अपने चरणों (के प्रहार) से मौत के घाट उतरने वाली पार्वती आप लोगों की रक्षा करें ॥ ७३ ॥

कृत्वा वक्त्रेन्दुबिम्बं चलदलकलसद्भ्रूलताचापभङ्गं
क्षोभव्यालोलतारं स्फुरदरुणरुचिस्फारपर्यन्तचक्षुः ।
संध्यासेवापराद्धं भवमिव पुरतो वामपादाम्बुजेन
क्षिप्रं दैत्यं क्षिपन्ती महिषितवपुषं पार्वती वः पुनातु ॥७४॥

चंचल केशों से सुशोभित जिसकी भौंहें धनुष की भाँति तनी हैं, क्रोध से आँखों की पुतलियाँ चंचल हैं, उदय होने वाले सूर्य

की-सी लाली लिये जिसकी आँखें खुली हैं ऐसे मुखचन्द्रमण्डल को (बना करके) संध्या की सेवा से अपराधी बने शिव की तरह अपने बायें चरण कमल से महिष का रूपधारण करने वाले दैत्य को सबके आगे से शीघ्रता पूर्वक (दूर) फेंकने वाली (फेंकती हुई) पार्वती आप लोगों को पवित्र करें ॥ ७४ ॥

गङ्गासम्पर्कदुष्यत्कमलवनसमुद्भूतधूलीविचित्रो
वाञ्छासम्पूर्णभावादधिकतररसं तूर्णमायान्समीपम् ।
क्षिप्तः पादेन दूरं वृषग इव यया वामपादाभिलाषी
देवारिः कैतवाविष्कृतमहिषवपुः सावतादम्बिका वः ॥७५॥

*गंगा के संपर्क से दोष लगा हुआ (पाँक लगा हुआ), कमल वन की धूलि लगने से विचित्र बना हुआ है, संपूर्ण भाव से इच्छा बनी है अतः शरीर में अधिक वेग (जोश) बना हुआ है, इस प्रकार

---

* विशेषः—शंकर गंगा को अपने सिर पर धारण करते हैं अतः पर-स्त्री के संसर्ग से दोषी हैं, उधर महिष रूपी दैत्य गंगा के कछार में लेप लगा लिया है, पूरे देह में पाँक लपेटा है फिर कमल वन में उठी धूल में लोट-पोट करके पाँक पर धूल चढ़ जाने से विचित्र चेहरा बना लिया है, शंकर जी भी कमल बन में उत्पन्न धूल (पराग) को भस्म की तरह लेप किये हैं। अतः विचित्र-अवधूत हो गए हैं, शंकर की इच्छा शक्ति सार्वभौम है, अतः इनमें भी सर्वविजयी होने का जोश बना है, उधर महिष में भी सम्पूर्ण देवमंडल पर विजय प्राप्त करने से अत्यन्त बेग है, इसी भावना से वे दोनों (शिव तथा महिष) देवी दुर्गा को खुश करने के लिए बिल्कुल उनके पास में आये हुए हैं और जगदम्बा के चरणों में लग जाना चाहते हैं जैसे (रति काल में) देवी अपने बांयें पैरों से शिव को झटकार देती हैं वैसी ही इस महिष दैत्य को देवी चण्डी ने अपने बांये पैरों से दूर फेंक दिया सो देवी आप सबकी रक्षा करें ॥

से जो पास में आया हुआ है, तथा (देवी के) बाँये पैर का जो अभिलाषी बना है (या देवी की प्रसन्नता पाने के लिए जो बाँये चरणों में लग जाने की कामना रखता है) ऐसे शंकर की तरह छलिया उस महिष देहधारी दैत्य को जिस देवी ने अपने वाम चरण से दूर (तक) फेंक दिया वह अम्बिका आप लोगों की रक्षा करें ॥ ७५ ॥

भद्रे भ्रूचापमेतन्नमयसि नु वृथा विस्फुरन्नेत्रबाणं
नाहं केलौ रहस्ये प्रतियुवतिकृतख्यातिदोषः पिनाकी ।
देवी सोत्प्रासमेवं धृतमहिषतनुं दृप्तमन्तःसकोषं
देवारिं पातु युष्मानतिपरुषपदा निघ्नती भद्रकाली ॥७६॥

हे भद्रे ! जिसमें नेत्ररूपी बाण फरफरा रहे (चल) हैं ऐसे (अपने) भौंह रूपी धनुष को (तुम) क्यों व्यर्थ में ही नवा (झुका) रही हो ? रतिक्रीड़ा में सौत के साथ रमण करने के कारण अपना अपराध जिसने सिद्ध कर दिया है वैसा शंकर (या धनुषधारी) मैं नहीं हूँ, जिसका *गोत्र (वंश)गड़बड़ (गिरा) है (माँ-बाप का सही पता नहीं है) वह शिव भी मैं नहीं हूँ; इस प्रकार मज़ाक करता हुआ, अपने हृदय में बहुत अधिक क्रोध रखनेवाला, भैंसे का रूप धारण करने वाला देवों का शत्रु (महिषासुर) दैत्य को अपने (वाम) कठोर चरण से वध करने वाली भद्रकाली देवी आप लोगों की रक्षा करें ॥७६॥

---

* विशेष—त्रिदेवों में—शिव के माता-पिता के विषय में सही-सही जानकारी किसी को नहीं है । इसीलिए यहाँ गोत्रस्खलित कहा है । शिव गंगा को अपने सिर पर धारण किए हैं अतः वे परस्त्री को अपने घर पाल रखे हैं तथा उससे मनोविनोद करते हैं अतः शंकर सौत के साथी प्रेमी हुए उनमें यही दोष है अतः महिषासुर की दृष्टि से शिव का चरित्त शुद्ध नहीं है उनकी अपेक्षा वह हर दृष्टि से अपने को कुलीन तथा चरित्रवान साबित कर रहा है इस श्लोक के द्वारा ।

अन्योन्यासङ्गगाढव्यतिकरदलितभ्रष्टकापालमालां
स्वां भोः संत्यज्य शम्भौ खुरपुटदलितप्रोल्लसद्धूलिपाण्डुः ।
भद्रे क्रीडाभिमर्दी तव सविधमहं कामतः प्राप्त ईशो-
ऽत्रैवं सोत्प्रासमव्यान्महिषसुररिपुं निघ्नती पार्वती वः ॥७७॥

हे भद्रे ! एक दूसरे के साथ (परस्पर) मिलने से जो पिस गयी है इसलिए वह भ्रष्ट हुई कपाल (खोपड़ी) की (आलिंगन) अपनी माला को तुम (भ्रष्ट गोत्र वाले) शम्भु पर फेंक करके, खुरफटों से दबकर उठी हुई धूलि लगने से जो पाण्डु (पीला) बना है और गाढ आलिंगन करने की उत्कण्ठा लगी है या तुम्हारे साथ संग्राम करने की इच्छा से मैं ईश—शंकर स्वरूप होकर तेरे पास काम भावना से (रमण करने के लिए) यहाँ आया हूँ*; इस प्रकार मखौल करने वाले महिषासुर शत्रु को अपने चरणों का दास बनाती हुई वह पार्वती देवी आप लोगों की रक्षा करें ॥ ७७ ॥

ज्वालाधाराकरालं ध्वनितकृतभयं यं प्रभेत्तुं न शक्तं
चक्रं विष्णोर्दृढास्त्रि प्रतिविहतरयं दैत्यमालाविनाशि ।
क्षुण्णस्तस्यास्थिसारो विबुधरिपुपतेः पादपातेन यस्या
रुद्राणी पातु सा वः प्रशमितसकलोपप्लवा निर्विघातम् ॥७८॥

सकल संकट-आपदा को शमन करने वाली वह रुद्राणी (शिव पत्नी) निर्बाध रूप से आप लोगों की रक्षा करे, जिसके चरण की ठोकर

---

* देवीभागवत पुराण में महिषासुर का यह निम्नोक्त वचन ध्यान देने लायक हैं—

आतुरोऽस्मि वरारोहे प्राप्तस्ते शरणं किल ।
प्रपन्नं पाहि रम्भोरु कामबाणैः प्रपीडितम् ॥

लगने से ही उस देव शत्रु महिषासुर के शरीर की हड्डियाँ पिस गई थीं; जिस हड्डी को विष्णु भगवान् का चक्र (सुदर्शन चक्र) विखण्डित करने में असमर्थ रहा, जिस (चक्र) में आग की लपट (लौ) डरावनी हैं, भयंकर ध्वनि जिसमें हो रही हैं, जिसके कोश दृढ़ हैं, जिसकी धार बड़ी तेज है तथा दैत्यों के समूह को विनाश करने वाला है ॥ ७८ ॥

गाढावष्टम्भपादप्रबलभरनमत्पूर्वकायोर्ध्वभागं
दैत्यं संजातशिक्षं जनमहिषमिव न्यक्कृताग्र्याङ्गभागम् ।
आरूढा शूलपाणिः कृतविबुधभयं हन्तुकामं सगर्वं
देयाद्वश्चिन्तितानि द्रुतमहिषवधावाप्ततुष्टिर्भवानी ॥७९॥

जो (महिषासुर) देवताओं में भय पैदा किया हैं, मारने की इच्छा रखता है, घमण्डी है, दृढ़ टेक वाले पैरों के प्रबल भार के कारण जिसका अगला-पिछला भाग झुक रहा है, अपने आगे पैदा लेने वाले को जो नकार दिया हैं; इसीलिए मानो (देवी) एक शिक्षित सामान्य महिष पर चढ़ी हुई है* हाथ में त्रिशूल ली है, शीघ्रगामी महिष (दैत्य) के वध से जो संतुष्ट है वह भवानी (भव-शिव पत्नी) आप लोगों के चिन्तित वस्तु को देवें ॥ ७९ ॥

ब्रह्मा योगैकतानो चिरहभवभयाद्धूर्जटिः स्त्रीकृतात्मा
वक्षःशौरेर्विशालं प्रणयकृतपदा पद्मवासाधिशेते ।

---

* जब देवी संहारकारिणी रूप से आती है तो उस समय उनका वाहन महिष—भैंसा होता है । इसीलिए आज भी शारदीय नवरात्र या वासंतिक नवरात्र पर देवी के लिए भैंसा छोड़ा जाता है यानी भैंसे का मात्र कान काट कर देवी के नाम पर छोड़ दिया जाता है । देवीकवच में इन्हें 'महिषवाहिनी' कहा गया है—'गुदे महिषवाहिनी' । यमराज का भी वाहन तो भैंसा ही है ।—संपादक

युद्धक्ष्मामेवमेते विजहतु धिगिमं यस्त्यजत्येष शक्रो
दृप्तं दैत्येन्द्रमेवं सुखयतु समदा निघ्नती पार्वती वः ॥८०॥

ब्रह्मा योगनिष्ठ है (कमलासन लगाकर बराबर समाधि में लीन रहते हैं), संसार से विरह के भय से शिव ने अपने स्वरूप को स्वयं स्त्रीमय (अर्धनारीश्वर) बना लिया है (और) विष्णु के विशाल वक्ष (चौड़ी छाती) पर तो लक्ष्मी शयन करती है; इस प्रकार (अपना जीवन जीने वाले ये त्रिदेव यदि इस युद्ध भूमि को छोड़ते हैं तो छोड़ें किन्तु यह जो देवराज इन्द्र (होकर) युद्ध भूमि को छोड़ता है (युद्ध भूमि से भागता है) तो इसे धिक्कार है, इस प्रकार घमण्ड करने वाले दैत्यराज महिषासुर को अपने चरणों का दास बनाती हुई मदमाती पार्वती आप लोगों को सुख देवें ॥ ८० ॥

एवं मुग्धे किलासीः करकमलरुचा मा मुहुः केशपाशं
सोऽन्यस्त्रीणां रतादौ कलहसमुचितो यः प्रिये दोषलब्धे।
वैदग्ध्यादेवमन्तःकलुषितवचनं दुष्टदेवारिनाथं
देवी वः पातु पार्ष्ण्या दृढतनुमसुभिर्मोचयन्ती भवानी ॥८१॥

हे मुग्धे! कमल के समान कोमल सुन्दर अपने हाथों से बालों की लटा को बार-बार (इधर-उधर) मत फेंको (क्योंकि) वह (केश-पाश) तो अन्य स्त्रियों के साथ रति क्रीड़ा आदि दोषी बने अपने प्रिय (पति) में समुचित रूप से कलह* (लड़ाई-झगड़ा) किया है। इस प्रकार चातुर्यभरी वाणी से मलीन हृदय वाले दुष्ट उन दैत्यों के पति (नाथ) महिषासुर के देह को एड़ी से (मारकरके) प्राण लेने वाली भवानी देवी आप लोगों की रक्षा करें॥ ८१ ॥

---

* विशेष—यह तुम्हारा केशकलाप अन्य स्त्रियों में रत शिव को अपमानित करके पछताने वाला है, अतः यह कलहान्तरित है।

बालोऽद्यापीशजन्मा समरमुडुपभृत्पांशुलीलाविलासी
नागास्यः शातदन्तः स्वतनुकरमदाद्विह्वलः सोऽपि शान्तः।
धिग्यासि क्वेति दुष्टं मुदिततनुमुदं दानवं सस्फुरोक्तं
पायाद्वः शैलपुत्री महिषतनुभृतं निघ्नती वामपार्ष्ण्या ॥८२॥

इस प्रकार मुँह फट बात करने वाला, आनंद में (रोमाञ्चित हो) मस्त रहने वाला, भैंसे का रूप धारण करने वाला दानव (दैत्य: महिषासुर) को अपनी बाँये एड़ी से (मारकर) अधीन बनाती हुई शैल पुत्री देवी आप लोगों की रक्षा करें। देवी शैल पुत्री को ऐसा क्यों करना पड़ा तो उत्तर देते हैं—) संग्राम के विषय में कार्तिकेय अभी बालक है, चन्द्रशेखर-शिव तो अपने देह में भस्म लगाकर बाबा बन बैठे हैं, गणेश जी दुर्बल दाँत लिए बैठे हैं या अपने शरीर के मोटापे के कारण परेशान रहते हैं इसलिए वह भी इस समय शान्त है (ऐसी दशा में) तुम मुझसे बचकर कहाँ जा रही हो, छि:—इस प्रकार औंधी बात करने वाले उस दानव (महिष) को शैलपुत्री ने अपने एड़ी से कुचलकर मार दिया है, अतः वह आप लोगों की भी रक्षा करें॥ ८२॥

मूर्धः शूलं ममैतद्विफलमभिमुखं शङ्करोत्खातशूलं
सङ्ग्रामाद्दूरमेतद्धृतमरि हरिणा मन्मनः कर्षतीव।
गर्वादेवं क्षिपन्तं विबुधजनविभून्दैत्यसेनाधिनाथं
शर्वाणी पातु युष्मान्पदभरदलनात्प्राणतो दूरयन्ती ॥८३॥

शिव इत्यादि को भी इस प्रकार घमंड में आकर अपमान करने वाला दैत्य सेनाओं का संचालक महिष (दैत्य) को अपने पैरों के भार से कुचल कर मार डालने वाली शर्वाणी आप लोगों की रक्षा करें। (शिवादि देवताओं को कैसे अपमानित होना पड़ा तो कहते

हैं—) शंकर ने मारने के लिए अपना त्रिशूल उछाला परन्तु महिष पर व्यर्थ गया, यह प्राण नहीं लिया बल्कि (त्रिशूल) उसके माथे में लग कर अत्यन्त दुखदायी बना है, और विष्णु ने जो चक्र चलाया वह भी संग्राम से दूर ही रहा। अतः यह भी मेरे मान को कचोटती सी है. (अतः उस गर्वीले दैत्य को शर्वाणी ने समाप्त कर दिया जो आप सब की रक्षा करे) ॥ ८३ ॥

भ्राम्यद्भ्रामौर्वदाहक्षुभितजलचरव्यस्तवीचीन्सकम्पान्
कृत्वैवाशु प्रसन्नान्पुनरपि जलधीन्मन्दरक्षोभभाजः ।
दर्पादायान्तमेव श्रुतिपुटपरुषं नादमभ्युद्गिरन्तं
कन्याद्रेः पातु युष्मांश्चरणभरनतं पिंषती दैन्यनाथम् ॥८४॥

वडवानल (समुद्र की अग्नि) के दाह से जहाँ के जल चर प्राणी क्षुब्ध हैं और जिसमें तरंगें (लहरियाँ) उठ रही हैं ऐसे निर्मल जल वाले समुद्र को मानों फिर से मन्दराचल के द्वारा क्षोभ पैदा करने के लिए शीघ्रता करके बड़े घमण्ड से आया हुआ है और कानों को अति कठोर लगने वाले डकार करने वाले दैत्याधिपति (महिष) को अपने चरणों के भार से झुकाकर पीस डालने वाली हिमकन्या आप-सबकी रक्षा करे ॥ ८४ ॥

अथाह जलराशि के भीतर चक्र की नाईं घूमते हुए वड़वानल (समुद्र की अग्नि) के दाह से जहाँ के जलचर प्राणी क्षुब्ध हैं और जिसमें तरंगे (लहरें) उठती रहती हैं ऐसे निर्मल जल वाले समुद्र को (भी) मानो फिर से मन्दराचल के क्षोभ का अनुभव करा करके यानी उसके शुद्ध जल को शीघ्र ही गंदला करके बड़े घमण्ड में होकर अभी आया हुआ है और कानों को कठोर लगने वाले चित्कार ध्वनि कर रहा है (ऐसे) उस दैत्यनाथ (महिष) को अपने चरणों के भार से नीचे की ओर झुकाकर पीसती हुई वह अद्रिकन्या (पार्वती) आप लोगों की रक्षा करे ॥ ८४ ॥

मैनामिन्दोऽभिनैषीः श्रितपृथुशिखरां भृङ्गयुग्मस्य पार्श्वं
युद्धक्ष्मायां तनुं स्वां रतिमदविलसत्स्त्रीकटाक्षक्षमेयम् ।
भानो किं वीक्षितेन महिषतनौ त्वं हि संन्यस्तपादो
दर्पादेवं हसन्तं व्यसुमसुरमुमा कुर्वती त्रायतां वः ॥८५॥

हे इन्दु (हे चन्द्रमा) तुम पर्वत शिखर की तरह कठोर मेरे शरीर तथा दोनों सींगों के सामने (पास में) मत आओ, क्योंकि तुम्हारा यह शरीर रति मद से विलसित स्त्री के कटाक्ष को ही सहने में समर्थ है। हे सूर्य ! इस प्रकार देखने से क्या फायदा ? तुम अपनी प्रखर किरणों को (पैरों को) सामान्य भैंसों पर रखो चूँकि मैं वैसा भैंसा नहीं हूँ कि तुम अपना पैर रखने को सोचते हो (चाहते हो) । इस प्रकार घमण्ड से हँसते हुए असुर (महिषासुर) को जीवन मुक्त करती (मारती) हुई उमा आप लोगों की रक्षा करे ॥ ८५ ॥

विशेषः—स्मरण रहे कि भैंसे का शरीर बहुत गर्म होता है यानी गर्म मिजाज का होता है । अतः वह सूर्य की प्रखर धूप नहीं बर्दास्त कर पाता है ।

सङ्ग्रामाग्रस्तमेतं त्यज निजमहिषं लोकजीवेश मृत्यो
स्थातुं शूलाग्रभूमौ गतभयमजयं मत्तमेतं गृहाण ।
दैत्ये पादेन यस्याश्छलमहिषतनौ शायिते दीर्घनिद्रां
भावोत्पत्तौ जयैवं हसति पितृपतिं साम्बिका वः पुनातु ॥८६॥

जिस (देवी) के चरण (चोट) से छल से भैंसे का रूप धारण करने वाला दैत्य चिरनिद्रा (मृत्यु) में सो गया (मर गया) तो भावावेश में आकर जया (देवी) यमराज को लक्ष्य करके इस प्रकार हँसती है, (अतः) वह अम्बिका आप लोगों की रक्षा करे। (ऐसा क्यों—अर्थात् हँसने का ढंग कैसा है—।) हे संसार के प्राणियों के पति

मृत्युदेव ! युद्ध से डरने वाले इस महिष को त्याग दो, (और) त्रिशूल की नोक पर खड़ा होने में जिसे भय नहीं रहा ऐसे अजेय इस मत्त—मदोन्मत्त (भैंसे) को ग्रहण करो (अपनी सवारी बना लो) ॥ ८६ ॥

विशेषः—यमराज की सवारी भी भैंसा ही है।

श्रुत्वैतत्कर्म भावादनिभृतरभसं स्थाणुनाभ्येत्य दूरा-
च्छ्लिष्टा बाहुप्रसारं श्वसितभरचलत्तारका धूतहस्ता।
दैत्ये गीर्वाणशत्रौ भुवनसुखमुषि प्रेषिते प्रेतकाष्ठां
गौरी वोऽव्यान्मिलत्सु त्रिदिविषु तमलं लज्जया वारयन्ती ॥८७॥

संसार के सुख (सम्पदा) को चुराने वाला (लुटने वाला), देवताओं का शत्रु महिष दैत्य की प्रेतपुरी (यम लोक) में भेजने के बाद (यानी महिषासुर के मरने के बाद) इस महिष वध रूप कार्य को सुनकर प्रेम भावावेश से चंचल एवं बड़े वेग से (जल्दी जल्दी में) दूर से आकर अपने बाहों को फैलाकर (देवी को शिवजी ने सबके सामने) आलिंगन किया। इस लिए हाथों से झटक देने वाली, गहरे साँस लेने के कारण जिसकी आँखों की पुतलियाँ चञ्चल हैं, सभी देवों के मिलने पर (वहाँ आ जाने पर) उस भोले शिव को लज्जा से मना करती हुई गौरी-पार्वती आप लोगों की रक्षा करे ॥ ८७ ॥

विशेषः—महिषासुर बहुत बली था अपने पराक्रम से सम्पूर्ण संसार को वश में कर रखा था, सागर पर्यन्त पृथिवी का एक छत्र राज भोग रहा था। उसका कोई वैरी नहीं था, ब्राह्मण उसके वश में होकर यज्ञ का भाग उसे ही दिया करते थे। देवी भागवत महापुराण के निम्नोक्त वाक्य ध्यान देने लायक है:—

एवं स महिषो नाम दानवो वरदर्पितः।
प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः॥

पृथिवीं पालयामास सागरां तां भुजार्जिताम् ।
एकच्छत्रां निरातंकां वैरिवर्गविवर्जिताम् ॥
(—दे० पु० अ० ३, श्लोक १–२)

भद्रे स्थाणुस्थवाङ्घ्रिः क्षतमहिषरणव्याजकण्डूतिरेष
त्रैलोक्यक्षेमदाता भुवनभयहरः शङ्करोऽतो हरोऽपि ।
देवानां नायिके त्वद्गुणकृतवचनोऽतो महादेव एष
केळावेवं स्मरारिर्हसति रिपुवधे यां शिवा पातु सा वः ॥८८॥

महिषासुर दैत्य के साथ युद्ध करने का बहाना बनाकर जिसमें खुजली हो रही है तथा उसी के साथ भिड़ने से स्वयं जो घायल हो गया है अतः तुम्हारा चरण ही सचमुच में ठूँठा पेड़ (स्थाणु) है, मैं स्थाणु (शिव या ठूँठा) नहीं हूँ। (चूँकि स्थाणु—ठूँठे खम्भे या पेड़ में देह रगड़ने से भैंसे की खुजली शांत होती है यह बात प्रसिद्ध है।) तीनों लोकों का कल्याण दाता तुम्हारा चरण है अतः शंकर स्वरूप है, फिर भुवन का भय हरने वाला है अतः (वह-तेरा पैर) हर (शिव का नाम 'हर' है अतः शिव रूप है) भी है। हे देवताओं की नायिका, तुम्हारे गुण के कारण ही यह वचन (यह शब्द) कहा है यानी महत्त्व-महत्ता से भरा तुम्हारा गुण है इसलिए यह (चरण) महादेव स्वरूप भी है; यानी मैं वास्तव में महादेव कहलाने लायक नहीं हूँ इसलिए कि महिषासुर वध के कारण सार्थक नाम जो हैं वे सब तुम्हारे चरण को ही सटीक लगते हैं। मुझ शिव में ये सार्थक नहीं लगते हैं। इस प्रकार रिपु—महिष (दैत्य) के वध के बाद शिवजी जिस देवी के साथ आमोद-प्रमोद के समय में ऐसा (वचन कहकर) हँसते हैं वह शिवा—पार्वती आप लोगों की रक्षा करे ॥ ८८ ॥

विशेषः—यहाँ कवि ने पार्वती के चरणों में शिव धर्म का आरोप किया है।

खड्गः कृष्णस्य नूनं रहितगुणगतिर्नन्दकाख्यां प्रयातः
शत्रोर्भङ्गेन वामस्तव मुदितसुरो नन्दकस्त्वेष पादः।
भावादेवं जयायां नुतिकृति नितरां सन्निधौ देवतानां
सव्रीडा भद्रकाली हतरिपुरवताद्वीक्षिता शम्भुना वः ॥८९॥

श्रीकृष्ण का खंग (तलवार) 'नन्दक' (आनन्द देनेवाला) कहा गया है परन्तु आज (देवी के आगे) वह अपने नन्दकत्व (आनन्द-दाता) गुण से हीन हो गया है। (क्योंकि) शत्रु के (महिष दैत्यके) नाश के कारण सब देवों को आनन्दित करने वाला तो तुम्हारा यह बँया पैर (चरण) ही (वास्तविक) नन्दक है। इस प्रकार देवताओं के समीप जया देवी भक्ति भाव से जिस देवी की बार-बार प्रशंसा कर रही थी (ऐसी दशा में) शत्रु को मारने वाली तथा लज्जा भाव से प्रसित शम्भु जिसे देख रहे हैं (वह) भद्रकाली आप लोगों की रक्षा करे ॥ ८६ ॥

एकेनैवोद्गमेन प्रविलयमसुरं प्रापयामीति पादो
यस्याः कान्त्या नखानां हसति सुररिपुं हन्तुमुद्यन्सगर्वम्।
विष्णोस्त्रिः पादपद्मं बलिनियमविधावुद्धृतं कैतवेन
क्षिप्रं सा वो रिपूणां वितरतु विपदं पार्वती क्षुण्णशत्रुः ॥९०॥

देव शत्रु को मारने के लिए गर्व पूर्वक उद्यत जिस देवी का चरण नखों की कांति (शोभा) से इस तरह हँसता है वह शत्रु संहारणी पार्वती आप लोगों के शत्रुओं की विपदा को शीघ्र ही बाँट दे। (पार कर दे) (इस तरह हँसने का क्या प्रयोजन तो कहते हैं—) मैं तो एक ही बार चरण रखने से शत्रु (महिष) को लय (समाप्त) करता हूँ (परन्तु) विष्णु का चरण कमल तो बलि को बाँधने की विधि में धोखे से तीन बार उठा था (तीन पग बढ़ा था) ॥ ६० ॥

विशेषः—वामनावतार में बलि दैत्य को दंडित करने के लिए विष्णु भगवान को छल-कपट का सहारा लेना पड़ा था और तीन बार चरण (भूमि) नापने में रखना पड़ा था। परन्तु देवी दुर्गा का चरण निःछल होकर एक ही बार में शत्रु महिष का काम तमाम कर दिया था अतः विष्णु के चरण से वह बढ़ा-चढ़ा पराक्रम वाला है यह कहने का भाव है।

खड्गं खट्वाङ्गयुक्तं युवतिरपि विभो ते शरीरार्धलीना
हास्यं प्रागेव लब्धं सुरजनसमितौ दुष्कृतेन त्वयैवम्।
जाता भूयोऽपि लज्जा रणत इयमलं हास्यता शूलभर्त-
र्दर्पादेवं हसन्तं भवमसुरमुमा निघ्नती त्रायतां वः ॥९१॥

(उस दैत्य के मजाक-हँसी करने का ढंग कैसा है?—) हे त्रिशूलधारी, तेरा खड्ग—तलवार तो *खट्वाङ्ग युक्त है। हे विभो, यह युवती (स्त्री) भी तो आपके आधे देह में लीन है (अर्धनारीश्वर बने हो)। इस दुराचरण से तुम देव समाज (सभा) में पहले ही से हँसी के पात्र बने हो; फिर इस युद्ध भूमि से (भागने के कारण) यह लज्जा जो मिली यह तो हँसी की हद हो गई (यानी तुम्हारी पूरी बदनामी यहाँ हुई) इस प्रकार अहंकार से शिव को हँसने वाला (शिवशंकर का मजाक उड़ाने वाला) उस असुर—महिष को धूल चटाती हुई (मारती हुई) उमा आप लोगों की रक्षा करे ॥ ९१ ॥

स्थाणौ कण्डूविनोदो नुदति दिनकृतस्तेजसा तापितं नो
तोयस्थाने न चासं सुखमधिकतरं गाहनेनाङ्गजातम्।

---

* एक सोटा जिसके सिरे पर खोपड़ी जड़ी रहती है जिसे शिवजी अपना हथियार बनाते हैं।

शून्यायां युद्धभूमौ वदति हि धिगिदं माहिषं रूपमेकं
रुद्राण्यारोपितो वः सुखयतु महिषे प्राणहृत्यादपद्मः ॥९२॥

यदि स्थाणु (शिव या खम्भा) में देह खुजाने का आनन्द लिया जाय तो उसे और उत्साह बढ़ता है (परन्तु यह स्थाणु-शिव या ठूँठा वृक्ष या खम्भा दृढ़ नहीं है ।) हमारा पूरा शरीर सूर्य के ताप से गरमा गया है किन्तु जलाशय में (या वरुण देव के साथ में) अवगाहन करने से (भिड़न्त करने से) भी अधिक सुख नहीं मिला (यानी वरुण देवता भी मुझे देखकर भाग गया ।) अतः इस भैंसा के रूप को धिक्कार है । (इस प्रकार) सब देवों के भाग जाने से युद्ध भूमि वीरान हो गई ऐसा महिषासुर के कहने पर रुद्राणी का चरण कमल आप लोगों को सुख दे जो (पैर) महिष के पीठ पर लदा हुआ है (आरोपित है) तथा उसके प्राणों का हरण करने वाला है ॥ ९२ ॥

पिंषञ्छैलेन्द्रकल्पं महिषमतिगुरुर्भग्नगीर्वाणगर्वं
शम्भोर्जातो लघीयाञ्छ्रमरहितवपुर्दूरमभ्यूह्यपातः ।
वामो देवारिपृष्ठे कनकगिरिसदां क्षेमकारोऽङ्घ्रिपद्मो
यस्या दुर्वार एवं विविधगुणगतिः सावतादम्बिका वः ॥९३॥

देवों के गर्व को भंग करने वाला, हिमालय की तरह धीर गंभीर महिषासुर को चूर्ण करने वाला, अति गुरु (भारी) होकर भी शंभु से (मर्यादा में) छोटा बना हुआ है, थकान रहित है तथा दूर तक जाने वाला है (जो गुरु होता है वह थक जाता है फिर दूर तक नहीं चल फिर सकता परन्तु यह थकता नहीं और दूर तक चला जाता है, देवों का शत्रु महिष के पीठ पर प्रतिकूल है (बायाँ है), सुमेरु पर्वत पर रहने वाले देवताओं का कल्याणजनक है इस प्रकार जिस (देवी) का चरण कमल विविध गुण-गति से भरा है वह अम्बिका आप लोगों की रक्षा करे ॥ ९३ ॥

मार्गं शीतांशुभाजां सरभसमलघुं हन्तुमुद्यन्सुरारिं
नेत्रैरुद्वृत्ततारैः सचकितममरैरुन्मुखैर्वीक्ष्यमाणः ।
यस्या वामो महीयान्मुदितसुरमनाः प्राणहृत्पादपद्मः
प्राप्तस्तन्मूर्धसीमां सुखयतु भवतः सा भवानी हतारिः ॥९४॥

अत्यंत वेगशाली तथा भारी (वजन वाला) देवशत्रु (महिष) को मारने के लिए आकाश की ओर जो (चरण) बढ़ गया है इसीलिए देवता-गण आश्चर्य में पड़कर ऊपर की ओर मुँह करके चंचल पुतली वाली आखों से जिस चरण को देख रहे हैं, जो (चरण महिष) के प्राणों को हरने वाला है, जिसका बाँया चरण कमल उस महिष के माथे (सिर) पर है वह (देवी) भवानी आप लोगो को सुख देवे जो देवताओं के मन को आनंदित करने वाली है तथा शत्रु संहारिणी है ॥ ६४ ॥

मूर्धन्यापातभग्ने मिषमहिषतनुः सन्ननिःशब्दकण्ठः
शोणाब्जाताम्रकान्तिप्रततघनबृहन्मण्डले पादपद्मे ।
यस्या लेभे सुरारिर्मधुरसनिभृतद्वादशार्धाङ्घ्रिलीलां
शर्वाणी पातु सा वस्त्रिभुवनभयहृत्स्वर्गिभिः स्तूयमाना ॥९५॥

जो लाल कमल की भाँति है तथा तामें की तरह जिसकी कांति है ऐसे जिस (देवी) के चरण कमल में देवों का शत्रु, कपटी वह महिष जो मस्तक पर प्रहार के कारण थोड़ा-सा शब्द कंठ से उच्चारित करके रह गया है (इसलिए निश्चल भौंरा बना है), चरण कमल के मधुरस में (डूबता सा) निश्चल भौंरे की लीला को प्राप्त किया है वह त्रिभुवन भय-हारिणी शर्वाणी देवी जिसे स्वर्ग के देवता स्तुति करते हैं आप लोगों की रक्षा करे जिसका चरण-कमल अति विस्तृत घना और विशाल आभोग वाला है ॥ ६५ ॥

पादोत्क्षेपाद्व्रजद्भिर्नखकिरणशतैर्भूषितश्चन्द्रगौरै-
र्मूर्धाग्रे चापतद्भिश्चरणतलगतैरंशुभिः शोणशोभः ।
संन्यस्तालीनरत्नप्रविरचितकरैश्चर्चितः क्षिप्तकायै-
र्यस्या देवैः प्रणीतो हविरिव महिषः सावतादम्बिका वः ॥९६॥

जिस (देवी) के (चरणों में) अपने शरीर को सौंपने वाले तथा दण्ड की भाँति (झुककर) प्रणाम करने वाले* देवताओं के द्वारा वह महिष मानो हवि के रूप में लाया गया है (ऐसी) वह अम्बिका आप लोगों की रक्षा करे, जिनके (देवी के) पाद विन्यास से निकल रहे (छिटक रहे) चन्द्र की तरह धवल सैकड़ों नख की किरणों से वह (महिष) विभूषित हो रहा है, माथे पर (देवी के) चरण के तल पर की लाल ज्योति पड़ने से (वह महिष) रक्त की शोभा को धारण कर रहा है और देवताओं के मुकुट में लगे (जड़ित) रत्नों की किरणों से वह (महिष) चमक रहा है ॥ ९६ ॥

क्वायं तीक्ष्णोग्रधाराशतनिशितवपुर्वज्ररूपः सुरारिः
पादश्चायं सरोजद्युतिरनतिगुरुर्योषितः क्वेति देव्याः ।
ध्यायं ध्यायं स्तुतो यः सुररिपुमथने विस्मयाबद्धचित्तैः
पार्वत्याः सोऽवताद्वस्त्रिभुवनगुरुभिः सादरं वन्द्यमानः ॥९७॥

अति तेज तथा प्रचण्ड सैकड़ों धारा (वार) को जो (अपने ऊपर) तेज (सहन या चोखा) कर चुका है ऐसा यह वज्रसरूप (कठोर) देव शत्रु (महिष) कहाँ ? और कमल जैसा सुकुमार कांति (शोभा)

---

* विशेषः—जो देवताओं के लिए हवि देता है वह दण्ड की तरह झुका-सा होता है । यहाँ हवि मांस पिण्ड के रूप में है, वह सफेद तथा लाल रंग का है । यह भी ध्वनित हुआ कि देवी की बलि में मांस बलि भी एक है ।

धारण करने वाला इस देवी (अबला नारी) का हल्का-फुलका चरण कहाँ ? (यानी दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है) इस प्रकार से महिषासुर के मथन (मर्दन) करने पर त्रिभुवन के गुरु ब्रह्मादि देवताओं द्वारा विस्मय भरे चित्त (मन) से (जिस चरण को) इस प्रकार बार-बार ध्यान धर करके आदर पूर्वक स्तुति किया है वह पार्वती का चरण (पैर) आप लोगों की रक्षा करे ॥ ६७ ॥

वज्रित्वं वज्रपाणेर्दितितनयभिदश्चक्रिणश्चक्रकृत्यं
शूलित्वं शूलभर्तुः सुरकटकविभोः शक्तिता षण्मुखस्य ।
यस्याः पादेन सर्वं कृतममररिपोर्बाधयैतत्सुराणां
रुद्राणी पातु सा वो दनुविफलयुधां स्वर्गिणां क्षेमकारी ॥९८॥

वह रुद्राणी आप लोगों की रक्षा करें, जिनका (एकमात्र) चरण इन्द्र का वज्र (होकर), विष्णु का चक्र सुदर्शन (बनकर) शिव का त्रिशूल (होकर) तथा देवताओं के सेनापति प्रमुख कार्तिकेय महाराज का शक्ति नामक अस्त्र (होकर) महिषासुर (दैत्य) का वध करके उन देवताओं का सब कुछ सम्पन्न किया जो (देवतागण) दानवों के साथ युद्ध में सदैव विफल रहे हैं ॥ ६८ ॥

पङ्गुर्नेता हरीणामसमहरियुतः स्यन्दनश्चैकचक्रो
भानोः सामग्र्यपेतः कृत इति विधिना त्यक्तवैरः पतङ्गे ।
दर्पाद्भ्राम्यन्रणक्ष्मां प्रतिभटसमराश्लेषलुब्धः सुरारि-
र्यस्याः पादेन नीतः पितृपतिसदनं सावतादम्बिका वः ॥९९॥

सूर्य के साथ लड़ने में जिसने वैरभाव छोड़ दिया था और अपने बराबरी का समर (युद्ध) ठानने का लोभी बना हुआ था इसीलिए घमण्ड में आकर युद्ध भूमि का चक्कर लगा रहा था (ऐसे) महिष (दैत्य) को जिसका चरण यम लोक में पहुँचा दिया वह अम्बिका

आप लोगों की रक्षा करे। (सूर्य से वैरभाव क्यों छोड़ा था तो कहते हैं—) सूर्य के घोड़ों को हांकने वाला सारथी पङ्गु है, फिर उसका रथ विषम घोड़ों से युक्त है और एक पहिये वाला है। (इस प्रकार सूर्य का रथ विधाता ब्रह्मा की दुर्बुद्धि से लड़ाई की उचित सामग्री से रहित है इसीलिए वह (दैत्य) सूर्य में वैर भाव छोड़ दिया था ॥ ९९ ॥

युक्तं तावद्गजानां प्रतिदिशमयनं युद्धभूमेर्दिगीशां
हीयेताशागजत्वं सुभटरणकृतां कर्मणा दारुणेन।
यद्येष स्थाणुसंज्ञो भयचकितदृशा नश्यतीत्यद्भुतं त-
द्दर्पादेवं हसन्तं सुररिपुमवताभिघ्नती पार्वती वः ॥१००॥

पूर्वादि दिशाओं के मालिकों के हाथियों का युद्ध भूमि से (भाग कर) अपनी-अपनी दिशा जाना तो उचित लगता है क्योंकि अच्छे वीरों के साथ युद्ध भूमि में उनका मरण निश्चित प्रायः है अतः वे आशा रूपी गजों-दिग्गजों को छोड़ दे रहे हैं परन्तु यदि यह स्थाणु नामक शिव भय से चकित दृष्टि होकर भाग रहा है यही (मुझे देख-कर) अद्भुत (आश्चर्य) है क्योंकि स्थाणु—ठूँठ लकड़ी के खम्भा—का पलायन कहीं देखा नहीं गया है परन्तु यहाँ तो यह भी (नाश के भय से) भाग रहा है। इस प्रकार दर्प (घमण्ड) से हँसने वाले देववैरी महिष को धूल फँकाती हुई (चरणों का दास बनाती हुई) पार्वती आप लोगों की रक्षा करे ॥ १०० ॥

स्रस्ताङ्गः सन्नचेष्टो भयहतवचनः सन्नदोर्दण्डशाखः
स्थाणुर्दृष्ट्वा यमाजौ क्षणमिह सरूपं स्थाणुरेवोपजातः।
तस्य ध्वंसात्सुरारेर्महिषितवपुषो लब्धमानावकाशः
पार्वत्या न्यासपादः शमयतु दुरितं दारुणं वः सदैव ॥१०१॥

जिस क्रोधी को युद्धभूमि में क्षण भर देखकर जो ढीला पड़ गया, चेष्टाविहीन हो गया, भय से बोली बन्द हो गई (जो मौन हो गया), भुजाएँ रुक गईं, ऐसा वह स्थाणु—(शिव) सचमुच में स्थाणु हो गया (जड़वत हो गया) उस छली महिष रूपधारी देव वैरी को ध्वंस करने के कारण प्राप्त प्रतिष्ठा वाला पार्वती का वाम चरण आप लोगों के दारुण पाप (विपत्ति) को सदैव शान्त करे ॥ १०१ ॥

कुन्ते दन्तैर्निरुद्धे धनुषि विमुखितज्ये विषाणेन मूला-
च्छाङ्गूलेन प्रकोष्ठे वलयिनि पतिते तत्कृपाणे स्वपाणेः ।
शूले लीलाङ्घ्रिपातैर्ललितकरतलात्प्रच्युते दूरमुर्व्यां
सर्वाङ्गीणं लुलायं जयति चरणतश्चण्डिका चूर्णयन्ती ॥१०२॥

इति महाकविबाणभट्टविरचितं चण्डीशतकं समाप्तम् ।

देवी का कुन्त (भाला-बरछी) महिष के दाँतों के ऊपर (जाकर) रुक गया, सींग के कारण धनुष पर डोरी नहीं चढ़ा सकी, पूँछ से देवी की कलाई बँध गई थी इसलिए उनका कृपाण (तलवार) हाथ से सरककर (नीचे) गिर गया था चरणों के चञ्चल होकर के इधर उधर रखने से सुन्दर हाथों से (छूटकर) शूल (त्रिशूल) दूर जमीन पर जा गिरा (ऐसी दशा में) चण्डिका देवी चरण से उस महिष दैत्य को पूर्णरूप से चूर करती हुई जयकारी होवे ॥ १०२ ॥

इस प्रकार कपिलदेवगिरि विरचिता 'विजया'-हिन्दीटीका समाप्त ।

दुर्गापूजन-पद्धतिः

लेखक—वेदाचार्य पण्डित वेणीराम शर्मा गौड़

दुर्गा के उपासकों के लिये यह 'दुर्गापूजन-पद्धति' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। इसमें दुर्गापूजन के वैदिक और पौराणिक दोनों प्रकार के मन्त्र दिये हैं। इस पुस्तक में शतचण्डी-सहस्रचण्डी पाठ की विस्तृत हवनादि विधि तथा पूर्णाहुति आदि के मन्त्र भी दिये गये हैं। पुस्तक के अन्त में 'परिशिष्ट-भाग' दिया गया है, जिसमें दुर्गा के पाठ, हवन, बलिदान, पूजन सामग्री आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ज्ञातव्य विषय दिये गये हैं। इस प्रकार की सर्वश्रेष्ठ दुर्गापूजन-पद्धति का मूल्य लागत मात्र रखा गया है। १०–००

प्रातःस्मरणश्लोकसङ्ग्रहः

सम्पादक—वेणीराम शर्मा गौड

यह प्रातःस्मरणश्लोकसंग्रह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और लाभप्रद है। इसमें नित्य पठनीय देवी-देवताओंके श्लोकसंग्रहके साथ-साथ अनेक दुर्लभ प्रातःस्मरणीय श्लोक भी दिये गये हैं। अतः यह प्रत्येक हिन्दूके लिये पठनीय और संग्रहणीय है। १–५०

शिवपूजनविधिः

शिवभक्तों के लिये 'शिवपूजनविधिः' पुस्तक प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में वैदिक और पौराणिक मन्त्रों के द्वारा शिव को सुन्दर ढंग से पूजनविधि लिखी गई है। शिवपूजनविधि में आवरण-पूजन, आरती, पुष्पाञ्जलि आदि अनेक शिवपूजनसम्बन्धी विषय दिये गये हैं, जिससे यह पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गई है। शिवपूजन की ये इससे श्रेष्ठ और कोई पुस्तक नहीं है। २–००

गणपत्यथर्वशीर्षम्

यह गणपत्यथर्वशीर्ष वेदोक्त है। इसके प्रतिदिन पाठ करनेसे मनुष्यके सब प्रकारके विघ्नोंकी शान्ति होती है और धन-धन्यकी वृद्धि होती है। प्रत्येक मनुष्यके विघ्नोंका निवारण हो और धनकी प्राप्ति हो, इसी उद्देश्यसे गणपत्यथर्वशीर्ष प्रकाशित किया गया है। ०–७०

प्राप्तिस्थान—चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, दिल्ली